★ ॐ ★

'राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'

—स्वामी राम

वेदान्त, अध्यात्म, संस्कृति, धर्म एवं भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा
स्वामी राम के आदर्शों का एकमात्र लोकप्रिय मासिक—

मार्च १९७७

राम सन्देश
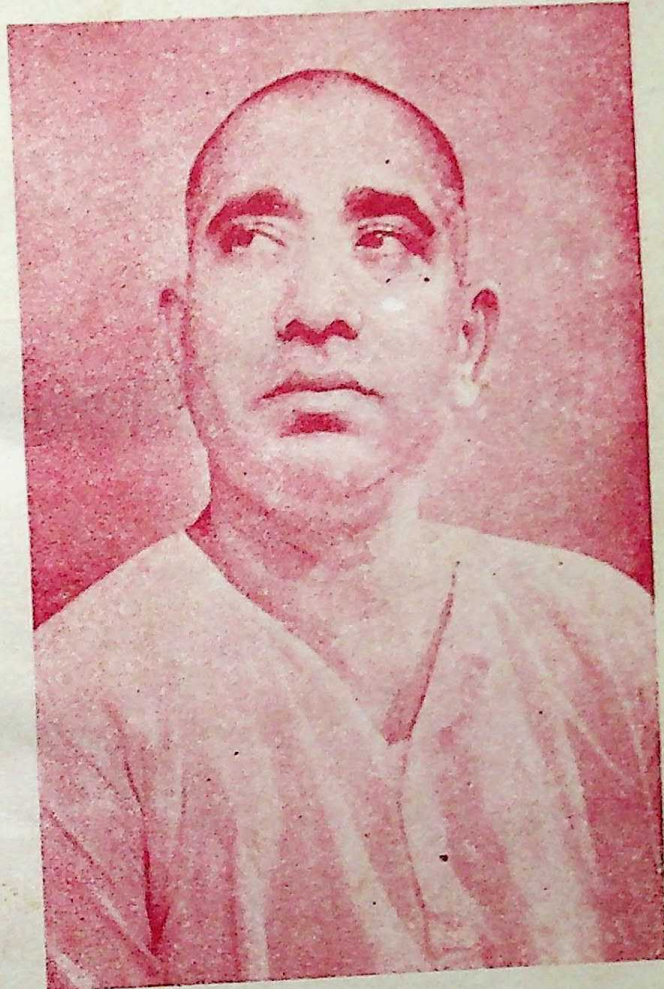
नीति-सुधा

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद् देहिनाम्,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीड़ा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।।

—देहधारियों के पास यदि क्षमा है तो कवच से क्या (फल) है (क्योंकि क्षमा द्वारा ही दुष्ट से रक्षा हो सकती है) यदि क्रोध है तो शत्रुओं से क्या (फल) है, क्यों कि जाति-भाई ही उसे जलाने को अर्थात दुःख देने को या ईर्ष्या के कारण जलाने को पर्याप्त है,, यदि मित्र है तो दिव्य औषधियों से क्या (फल है) क्योंकि मित्र ही सब रोगों को दूर भगा सकता है, यदि दुर्जन है तो सर्पों से क्या (फल) है (क्योंकि दुर्जन ही डसने को अर्थात् पीड़ित करने को पर्याप्त है), यदि प्रशंसनीय विद्या है तो धन से क्या (लाभ) है (क्योंकि विद्या द्वारा ही सुख प्राप्त हो सकता है] यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या (लाभ) है (क्योंकि लज्जा ही आभूषण का कार्य करती हैं) और यदि सुकविता है तो राज्य से क्या (लाभ) है (क्योंकि काव्य-साम्राज्य जन-साम्राज्य से भी बढ़कर है)

—नीति शतकम् (भतृहरि)

श्लोक—२१

राम सन्देश

वेदोपनिषदां तत्वम् सत्यं नित्यं सनातनम्।
तत्सर्वं "रामसन्देशे" पत्रेऽस्मिन्नवलोक्यताम् ॥

संस्थापक :
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज
व्यवस्थापक :
आचार्य स्वामी गोविन्दप्रकाश जी महाराज

इस अंक में :

अंक ३ — वर्ष २६

एक प्रति : भारत में ८५ पै०, विदेश में १ रु०
वार्षिक शुल्क : भारत में १०रु०, विदेश में १२ रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क :
भारत में —१००/-, विदेश में —५००/-

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)
सह सम्पादक— "निर्द्वन्द्व"

याद आती है शमां की जल के बुझ जाने के बाद!

मजहब कहता है अमन से रहो। सच्चाई की तरफ आओ। नेकी का काम करो.....। ये मान्यता थी भारत के राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली साहब की। जिनके सुदृढ़ कन्धों पर देश अपने को अपने लक्ष्य की ओर बढ़ाने में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक अर्थात् उन सभी विभिन्न दृष्टिकोणों से जिनकी आवश्यकता राष्ट्र की व्यष्टि और समष्टि दोनों को होती हैं, सफल हो रहा था। अचानक ११ फरवरी के प्रकृति प्रहार ने कुछ समय के लिये जनमानस की भावनाओं को झकझोर दिया। रुक गया सब कुछ, झुक गया राष्ट्रीय ध्वज अपने प्रिय राष्ट्रपति के वियोग के शोक में। लिपट गया उनके पार्थिव शव के चारों ओर मानों कहता हो कि अभी नहीं, अभी नहीं अभी तुम्हारी आवश्यकता है भारत को। लेकिन दीपक बुझ चुका था मात्र अवशेष थी उसका धुन्धली स्मृतियां। देश स्वामीहीन साध्वी की तरह मौन हो मात्र स्मृतियों में खोया सा प्रतीत हो रहा था।

पर, क्योंकि रुकना उस महान विभूति के जीवन-तत्वों की उपेक्षा होगी अतः प्रकृति प्रदत्त इस वियोग से अपने उस मार्ग पर, जिस पर चलना फखरुद्दीन अली साहब ने अपने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन से विश्व को सिखाने का प्रयास किया, चलने की प्रतिज्ञा कर उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धान्जलि समर्पित करते हुए राम-दरबार उनके शोक सन्तप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है। परमात्मा उन्हें वियोग की इस घड़ी में असह्य वेदना को सहन करने की क्षमता दे।

—सम्पादक

गतांक से आगे:—

व्यावहारिक वेदान्त

उन्नति का मार्ग

इस पर प्रश्न यह होता है कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न के हैं; किन्तु प्रयत्न से क्या होता है, प्रत्येक वस्तु प्रारब्ध के अधीन है, अर्थात भाग्य पर निर्भर है। यह विषय स्वयं ऐसा है कि इस पर स्वतन्त्र व्याख्यान दिया जाय, किन्तु संक्षेपत: उत्तर यह है:—

तत्व तो यह हैं कि जो लोग कहते हैं कि प्रत्येक काम भाग्य से होता है, वे भी सच कहते हैं । वे इस सिद्धांत को लागू करने में भूल करते हैं। दृष्टान्त रूप से, जैसी ऋतु होगी, वैसा स्वभाव हो जायगा । जाड़े की ऋतु में गरम कपड़े पहनोगे, घर के भीतर रहोगे, आग जलाओगे, आदि-आदि । गरमी की ऋतु में मैदान में रहोगे, ठण्ड़े कपड़े पहनोगे, ठण्डा पानी पिओगे, आदि-आदि ।

अब ऋतु का बदलना दैव-इच्छा या भाग्य का प्रारब्ध है, अर्थात वह एक नियत नियम है। और यह प्रारब्ध सारे देश पर प्रभुत्व स्थापित किये हुये है, किन्तु ऋतु के अनुसार कपड़े पहनना और उसके अनुसार स्वभावों को बनाना अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर है । परिवर्तित ऋतु की दशा इसमें कुछ नहीं कर सकती । चोर चोरी करता है, विद्यार्थी पढ़ता हैं, जज मुकदमे का फैसला करता है, ये सब लोग अपने अपने काम सूर्य की सहायता से करते है । इन लोगों में काम करने की शक्ति अन्न खाने से आती है, अन्न सूर्य के प्रकाश और शक्ति को खा जाता है । प्रकार वही सूर्य का तेज इन लोगों में आकर काम करता है । दीपक के प्रकाश में भी वह ज्योति है, जो उसने सूर्य से उधार ली है। अत: स्पष्ट है कि वस्तुत: इन सबके कामों को करने वाला सूर्य है । किन्तु क्या बात है कि सूर्य को कोई चोरी का लांछन नहीं लगाता । उसको क्यों नहीं अपराधी निश्चित किया जाता ? कारण यह है कि सूर्य सामान्य अवयव (Common factor) है, क्योंकि उसने वकील, मुद्दई और जज को भी उसी तरह की शक्ति दी है, जिस तरह पर कि चोर को । व्यवहार में सामान्य अवयव (Common factor) निकाल दिया जाता है । जिस तरह अवयव की तुलना में अ—ब=ज—ब के अर्थ अ=ज हैं, अर्थात् ब जो सामान्य अवयव (common factor) था, खारिज कर दिया गया और इस समानता में कोई अन्तर भी नहीं आया । इसी तरह पर कल्पना करो कि एक मनुष्य दूसरे के धक्के से

[दि० २४ सितम्बर सन् १९०५ को दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान]

गिर पड़ा, तो वस्तुतः इसके गिरने का कारण गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of gravitation) है, किन्तु वह उस नियम से नहीं लड़ेगा। वह तो उस धक्का देने वाले को पकड़ेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य में कुछ भाग अस्थिर (Variable) है और कुछ भाग स्थिर (invariable) है। स्थिर भाग तो प्रारब्ध है, और अस्थिर भाग पुरुषार्थ हैं। अब यह देखना है कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध भी है या एक दूसरे से वे बिलकुल सम्बन्ध-रहित और निष्प्रयोजन हैं। राम इसको व्यावहारिक दृष्टि से आपके समक्ष उपस्थित कर रहा है। इनमें एक विशेष सम्बन्ध है। आपकी प्रारब्ध आप ही की बनाई हुई है। यदि पुरुषार्थ कोई वस्तु ही नहीं है, तो धार्मिक पुस्तकों में विधि और निषेध क्यों सिखाया गया है? इसी के लिये कहा है—

दर्मियाने-कारे-दरिया तख्ताबंदम करदई;
बाज मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश।

अर्थ—नदी के भारी वेग में तो हाथ-पांव बाँधकर मुझे डाल दिया, और फिर यह तू कहता है कि होशियार हो। पल्ला मत भीगने दो, अर्थात लिपायमान मत हो।

धार्मिक पुस्तकों को देखने से, चाहे वे मुसलमान, हिन्दू या ईसाई धर्म की हों, यह स्पष्ट विदित होता है उन्होंने आपके भीतर पुरुषार्थ का एक अंश पाया है।

अब राम दोनों का सम्बन्ध दिखाता है। रेलगाड़ी पटरी को छोड़कर इधर या उधर नहीं जा सकती है। पटरी उसकी भाग्य है, किन्तु चलने में वह स्वतन्त्र है, यह उसका पुरुषार्थ है। किन्तु रेल जारी होने से पहले पटरी भी रेलवालों के अधिकार में थी। इसी प्रकार एक व्यक्ति एक गरीब के यहां उत्पन्न होता है, जहां उसके माता-पिता खाने तक को मोहताज हैं। वे उसकी सामान्य परिपालना भी नहीं कर सकते। एक दूसरा व्यक्ति किसी अमीर के यहां उत्पन्न होता है, और दूसरा किसी घोर मूर्ख के यहां जन्म लेता है। यह तो रेल की पटरी की तरह उसकी प्रारब्ध है, किन्तु इसमें पुरुषार्थ का भी भाग है, जिसके कारण वह अपनी दशा को सम्भाल सकता है। विदित रहे कि यह भाग्य की पटरी उन्हीं के पुरुषार्थ के अनुसार बनाई जाती है। देखो, मकड़ी अपने मुंह से तार निकालती है, और उसके बाद उसी पर चलती हैं। अब वह किसी दूसरी ओर नहीं जा सकती, यदि वह किसी दूसरी ओर जाना चाहे, तो फिर वह अपने मुंह में से तार निकाले और उसको उसी ओर ले जाय, तब उस ओर भी जा सकती है। तार निकलने से पहले वह तार निकालने का काम उसका पुरुषार्थ था, किन्तु निकलने के बाद यह उसकी प्रारब्ध बन गया। अब उसको उस पर चलने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

यह विदित है कि तार निकालने से पहले उसके अधिकार में था कि किसी ओर इसको ले जावे, अर्थात अपनी प्रारब्ध का बनाना उसके अधिकार में था। किन्तु जब एक बार वह बन गई फिर उसके बदलने के लिये पुनः पुनः वही कल की कार्रवाई करनी पड़ती है, जो एक बार

कर चुकी है। रेशम के कीड़े की दशा से भी यही सिद्ध होता है। एक और उदाहरण लीजिये। कल्पना कीजिये कि एक मनुष्य दस्तावेज लिखना चाहता है, अर्थात कुछ पुरुषार्थ करना चाहता है। अब इस पुरुषार्थ के समय उसको अधिकार है कि करे या न करे (अर्थात दस्तावेज लिखे वा न लिखे), अथवा जो शर्ते चाहे लिखे। किन्तु जब एक बार लिख चुका, तो फिर पाबन्द हो गया। वह उसकी प्रारब्ध बन गई। अब सिवाय शर्तों की पाबंदी के और कोई इलाज नहीं है। यथा--

यारे-मन खुद कर्दा रा इलाजे नेस्त ;
कर्दनी ख्वेश व आमदनी पेश ।

अर्थ—मेरे प्यारे ! अपने किये हुये पुरुषार्थ का और कोई इलाज नही, सिवाय इसके कि जो कुछ किया है, वह भोगने को सामने आवे।

हैं खते-तकदीर से यह खते परेशानियां;
पेश आती हैं यहीं जो हैं जो पेश-आनियाँ ।

योगवशिष्ठ में लिखा है कि पुरुषार्थ ही से कार्य की सिद्धि होती है। सारे बुद्धिमान लोगों के काम पुरुषार्थ ही से होते हैं। प्रारब्ध का शब्द तो केवल उन लोगों के आंसू पोंछने के वास्ते बनाया गया था, जो कोमल-चित्त हैं, और जिन पर कोई विपत्ति आ पड़ी है, नहीं तो नित्यप्रति जीवन के कुल काम पुरुषार्थ ही से हो सकते हैं। मनुष्य भोजन भी पुरुषार्थ ही से खाता है, पानी भी पुरुषार्थ ही से पीता है, नौकरी भी पुरुषार्थ ही से करता है, कोई सार्वजनिक काम भी पुरुषार्थ ही से करता है।

क्रमशः

* विविध उपदेश

लोग तुम्हारी स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे ऊपर कृपावती हो या न हो तुम्हारा देहांत आज हो या युग भर बाद, तुम न्यायपथ से कभी भ्रष्ट न हो। कितने ही तूफान पार करने पर मनुष्य शान्ति के राज्य में पहुंचता है। जो जितना बड़ा हुआ है, उसके लिए उतनी ही कठिन परीक्षा रखी गई हैं।

— — —

मेरी आशा, विश्वास तुम्ही लोग हो। मेरी बातों को ठीक ठीक समझकर उसीके अनुसार काम में लग जाओ। ····· उपदेश तो तुम्हें अनेक दिये; कम से कम एक उपदेश को भी तो काम में परिणित कर लो। बड़ा कल्याण हो जायगा। दुनिया भी देखे कि तुम्हारा शास्त्र पढ़ना तथा मेरी बातें सुनना सार्थक हुआ है।

स्वामी रामतीर्थ युवा संगठन द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता
में प्रथम पुरस्कृत :

वासना, प्रेम और सृजन

★ जितेन ठाकुर

कुछ ही देर पहले धोबी धुली हुई उजली चादरें तह करके बाहर तख्त पर रख गया है। मैं दीवान पर बिछाने के लिये एक चादर उठा लेता हूँ और हाथों से चादर के किनारे पकड़ कर हल्के से झटक देता हूँ।

तह–दर-तह–चादर खुल जाती है।

मै ध्यान से देखता हूँ। उजली उजली तहों से कुछ हल्के भूरे धब्बे स्पष्ट होकर उभर आये है। मुझे निश्चय ही ध्यान है कि ऐसा कोई दाग धुलाई को दिये जाने से पूर्व चादर में नहीं था। और अब धुलाई के बाद यह दाग।

धोबी की चतुरता पर सहसा ही खीझ होती है। कितनी चालाकी से तहों के बीच धब्बे छुपा गया था। यदि मैं इस समय धोबी को बुलाकर धब्बों का जिक्र करूं तो वह निश्चय ही इसके लिये कोई ऐसा कारण उपस्थित कर देगा जिसे मुझे प्रत्येक दशा में स्वीकारना ही पड़ेगा। फिर मैं स्वयं ही सोचता हूं यह प्रवृत्ति मात्र धोबी ही की न रहकर आज के सत्तर फीसदी लोगों को हो गई है।

कई दिनों से चलने वाला बुद्धि और अनुभव का द्वन्द्व एकाएक समाप्त हो जाता है।

मस्तिष्क के स्नायु विचारों की तीव्रता से होने वाले रक्त–प्रवाह से सिहर–सिहर जाते थे। परन्तु इन सबके बाद भी प्रेम को लेकर कभी स्थिर चिन्तन नहीं हो पाया। विषय की गूढता तो स्वयं में समस्या थी ही परन्तु इससे भी विकट समस्या थी किसी विशेष वस्तुस्थिति का अध्ययन कर अपने विचारों के लिये एक सूक्ष्म तल का निर्माण करना। सहसा, चादर की तहों के साथ अनेकानेक अन्य तहें स्वयं ही खुल गई थी। प्रत्यक्ष में कुछ न था परन्तु परोक्ष रूप से धोबी जैसे मुझे दिशा-निर्देश दे गया था।

वासना–प्रेम और सृजन।

तीनों स्थितियां एक दूसरे में इतनी गढन-गढ है जैसे सूर्य की किरणों में समाये सात रंग। विवेचना अथवा विश्लेषणात्मक अध्ययन हो भी तो किस छोर से। प्रेम की छोर–हीन डोर के अनेकानेक छोर हैं।

प्रेम तर्क का विषय नहीं, वरन अनुभव करने की चीज है। वायु की भांति प्रेम का मौलिक रूप भी 'स्पर्श' के अभिशाप से मुक्त है।

वासना शब्द को कितना उछाला जाता है। यदि हम तह-दर-तह नीचे

की ओर उतरें तो एक स्थिति निश्चय ही वह होगी जहां पहुंचकर वासना शब्द का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। सम्भवत: यही प्रेम की मीमाँसा भी हो सकती है।

प्रेम जैसी ही कोई वस्तु सृष्टि के आदि प्राणियों में भी अवश्य ही रही होगी। नर और मादा का सँयोग' प्रेम के सृजनित स्वरूप में आज से शताब्दियों पूर्व भी हुआ है। 'मनु' और 'शतरुपा' हों अथवा आदम और हउआ, अर्थात भिन्न भिन्न मतों के आदि प्राणियों के नाम भले ही समान न हों, परन्तु आदि प्राणियों का 'संयोग' निश्चित रूप से सृजन ही कहलायेगा। क्योंकि आज की सृष्टि उन्हीं की देन है।

कल्पना कीजिये कि आदि प्राणियों के 'संयोग' के फल-स्वरूप किसी ऐसे जीव की उत्पत्ति हो जाती जो कालांतर में उन्हें ही भक्ष कर लेता उस समय इस प्रकार के संयोग को क्या कहते ? सृजन। मैं स्वयं भी इस बात से सहमत हूँ कि यदि दूसरी स्थिति होती तब हमें इतने विचार विमर्श की आवश्यकता ही न आ पाती। परन्तु मेरा यह उदाहरण मात्र इस तात्पर्य को लेकर यहां प्रस्तुत है कि **व्यावहारिक रूप में प्रेम का वास्तविक 'मूल्यांकन' तभी स्पष्ट होता है जब प्रेम का परिणाम समक्ष आ जाता है।**

ब्रह्मा ने 'मनु' और 'शतरुपा' उत्पन्न किये तो क्या यहीं से सृष्टि की रचना माननी चाहिये। मैं इस बात को नकारता नहीं परंतु यदि तत्परता से इस बात का अध्ययन किया जाये तो हम पाएंगे कि सृष्टि की रचना के मूल में निहित था प्रेम। अवश्य ही 'मनु' और 'शतरूपा' के हृदय में ऐसा अंकुर फूटा होगा जिसने उन्हें एक दूसरे के समीप किया। उस समय उपरोक्त अंकुर को भले ही पारिभाषित न किया जा सका हो परन्तु विचार करने पर हम इसी निश्चय पर पहुँचेंगे कि यह आकर्षण के अतिरिक्त यदि कुछ था तो प्रेम ही था।

आदि प्राणियों के इस 'संयोग' को, जो उपरोक्त वर्णित दूसरी स्थिति है, वासना का बाना पहनाया जाये अथवा उसके परिणाम को देखते हुये सृजन कहा जाए ?

विषय अत्यधिक गूढ़तर एवँ विवादग्रस्त है। एक ओर जहां उक्त विषय नवीन माप-दण्ड स्थापित करता है वही दूसरी ओर अपने ही स्थापित माप-दण्ड को झुठलाता भी है। विषय पर बढ़ने से पूर्व हमें निर्णय लेना होगा कि विषय के प्रति केवल देश-काल को ही समक्ष रखकर विचार करना है।

प्रेम शब्द बोलने में कितना सरल है-कितना मृदुल। एक तुतलाता हुआ बालक भी कुछ चेष्टा के बाद इस का उच्चारण पा सकता है। परन्तु इस नन्हें से तुतलाते हुये शब्द की गहराई कितनी विकट है— कितनी दुश्वार ? हम व्यावहारिक अथवा साँसारिक तौर पर प्रेम के अनेकों रूपों का निर्माण करते हैं। यह रूप गढ़े जाते हैं परिस्थितियों की छैनी से, जिन पर हथौड़ा बनकर चोट करते हैं हमारे सम्बन्ध। और यह सम्बन्ध बनते हैं हमारी सामाजिक रूप-रेखा के अन्तर्गत।

आज की सामाजिक समरूपता के आधार पर प्रेम

का दृष्टिकोण मात्र एक शिशु के समान है । वर्तमान सामाजिक परिस्थितियां, वातावरण एवं संस्कार इस शिशु को परिपक्वता प्रदान करते हैं । इस ना-समझ बालक की आकांक्षा मात्र इतनी है कि वह अपनी सम्पूर्ण प्यास के साथ प्रेम जैसे अनंत सागर की गहराईयों में गोते लगाकर निहाल होता रहे । इससे अधिक चितंन इस नवजात शिशु के बूते की बात नहीं । 'त्याग' और 'बलिदान' की मीमांसा उसके विचारों की दहलीज नहीं लांघ पाती। इसका उत्तरदायित्व है आज की प्रचलित उन परिभाषात्मक शैलियों को जो प्रेम जैसे विस्तृत अर्थ वाले शब्द को, मात्र चितवन से निहाल हो जाना, अथवा आलिंगन के रस में सरोबार रहना, जैसे भटके हुये अर्थों को समर्पित कर देती है इसका मूल कारण यह है कि आज के परिभाषात्मक प्रेम को वह सूक्ष्म तत्व प्राप्य नहीं, जिसकी तहों में समर्पण, त्याग और बलिदान जैसे विशाल स्तम्भ अपनी पूर्ण समर्थता के साथ अडिग खड़े रहते हैं । इस प्रकार **प्रेम का मुख्य उद्देश्य "आनन्द पाने के लिए आनन्द देने" जैसे— आधे शब्दों में ही सिमट कर रह जाता है ।**

यह स्थिति धोबी की तह की हुई चादरों के समान है । ऐसे प्राणी अपने अन्तस में धब्बे लिये हुये अपनी ऊपरी चमक को भोगते हैं और फिर कालांतर में इस स्थिति की विवेचना स्वयं ही स्पष्टतः नहीं कर पाते । संस्कारों की सात्विकता के नाम पर शून्य रहने वाले प्राणी कभी भी अपने ही स्वरों के अन्तर को स्पष्ट नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी स्थिति भ्रमात्मक है । वे अपने से ही पूर्णतः अनभिज्ञ हैं किसी भटके हुए पंथी की भांति ।

हम रेल के किसी डिब्बे में सवार होकर रेल के अन्य डिब्बों को भली प्रकार देख नहीं पाते ठीक वही दशा उपरोक्त वर्णित मनुष्य की होती है ।

प्रेम में एक दशा क्षणिक आवेश की भी आती है । इस दशा में आनन्द पंच-तत्वात्मक भौतिक देह को प्राप्त होता है, और स्वाभाविक तौर पर देह स्पर्शात्मक संबंधों की गरिमा भोगने की लालसा में अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से रीझ जाता है । इस चरण में प्रेम का विस्तार यहीं पर सिमट कर समाप्त भी हो जाता है । इस स्थिति में कुछ अधिक विचारणीय-विषय शेष नहीं रह पाता ।

प्रेम के क्षेत्र में हृदय और आत्मा की गति देह से भिन्न है । इस गति तक पहुंच बढ़ाने के लिए शरीर का आवश्यकताओं से ऊपर उठना आवश्यक है । और वास्तव में सृजनित रूप में वर्णित प्रेम का यही प्रथम नक्श है जिसे तराशना और संवारना हमारी प्रबल इच्छा-शक्ति एवं दृढ़ निश्चय पर निर्भर है ।

मुझे अपेक्षित करो न इतना, दे दो मधुर मृदुल सम्बल
नीरवता में मुखर हो पड़े, सहसा जीवन की हलचल,
जड़ता की हिमशिला पिघर कर, बने चेतना निर्झर जल
नया राग हो, नया साज हो, नया गगन हो, नव भू-तल ।

इन पंक्तियों में वर्णित प्रेम का का रूप अ य त भ्रमात्मक एवं विकट है । यह स्वर है प्रत्युत्तर में प्रेम पाने

से पूर्व का, जिसमें आकांक्षाओं और कल्पनाओं का सम्मिलित सा धुन्धला चित्र उभरता है।

उपरोक्त महत्वाकाँक्षाओं की अगली स्थिति कुछ भी हो सकती है। प्रति उत्तर में प्रेम मिल जाने पर निश्चय डगमगाने लगते हैं। आवश्यक नहीं कि प्रेम पाकर प्राणी नए–गगन और नव-भूतल का ही निर्माण करता रहे और प्रेम के वासनात्मक स्पर्श से बचा रहे। सर्वप्रथम प्रेम की प्राप्ति कर स्पर्श की लालसा में आकन्ठ डूबता है हमारा पंचतत्वात्मक भौतिक देह और यदि हम इस स्थिति से उतर कर आत्मा और हृदय के स्पर्श तक प्रेम को लाने में सफल हो जाते हैं तब हमारे अन्तस् में फूटे काव्य का एक-एक शब्द, हमारे कार्य-कलापों में बिखरी हुई सात्विकता, हमारे संस्कारों की पावनता, वास्तव में प्रेम का सृजनित स्वरूप होंगे।

प्रेम के सृजनित–स्वरूप में स्थापित मापदण्ड, सदैव ही युग के लिए किसी मील के पत्थर के समान कार्य करते हैं। आत्मा का उत्थान, प्रेम के सृजनित रूप की ही देन हो सकता है, और इस स्थिति में समाज को एक नवीन दिशा-सूचक की प्राप्ति होती है।

यदि प्रेम–सम्बन्ध से प्रेमी संसार में व्याप्त होने वाले सार्वभौमिक प्रकाश के समीप पहुँच जाते हैं तब तो प्रेम कल्याण कर है और यदि उसका ऐसा परिणाम नहीं हो तब प्रेम विष के समान है, पापमय हैं, अभिशाप है।

प्रेम के अतुल वैभव को केवल एक माणिक के मूल्य में आंकने की ऊपर मात्र एक चेष्टा की गई है। वास्तविकता यह है कि **प्रेम के स्वरूपों को वर्णित करना ठीक वैसी ही चेष्टा है जैसे शब्दों के जन्म से पूर्व अर्थों का रूप घड़ने की कोशिश की जाय।**

———

मानव : अपना भाग्यनिर्माता

दुर्भाग्य की बात है कि अधिकाश व्यक्ति इस जगत् में बिना किसी आदर्श के ही जीवन के इस अन्धकारमय पथ पर भटकते फिरते हैं। जिसका एक निर्दिष्ट आदर्श है, वह यदि एक हजार भूलें करे तो यह निश्चित है कि जिसका कोई भी आदर्श नहीं वह दस हजार भूलें करेगा। अतएव एक आदर्श रखना अच्छा है।

—स्वामी विवेकानन्द

बिन्दु-सिन्धु

१) पुत्र, स्त्री, धन और खाने से सच्ची तृप्ति नहीं हो सकती। यदि होती तो अब तक किसी न किसी योनी में हो ही जाती। सच्ची तृप्ति का विषय है केवल एक परमात्मा, जिस के मिल जाने पर जीव सदा के लिये तृप्त हो जाता है।

२) दुख मनुष्यत्व के विकास का साधन है। सच्चे मनुष्य का जीवन दुख में ही खिल उठता है। सोने का रंग तपाने पर ही चमकता है।

३) सर्वत्र परमात्मा की मधुर मूर्ति देख कर आनन्द में मग्न रहो, जिसको सब जगह उसकी मूर्ति दिखती है, वह तो स्वयं आनन्द स्वरूप ही है।

४) किसी भी अवस्था में मन को व्यथित मत होने दो। याद रखो परमात्मा के यहाँ कभी भूल नहीं होती और न उसका कोई विधान दया से रहित ही होता है।

५) परमात्मा पर विश्वास रख कर अपनी जीवन-डोरी उसके चरणों में सदा के लिये बाँध दो, फिर निर्भयता तो तुम्हारे चरणों की दासी बन जायगी।

—कुमार,
देहरादून

★ राम सन्देश - सुधारकों के नाम ★

भारत बन्धु शर्मा, दिल्ली

(१ जनवरी, १९०२ ई० में स्वामी राम ने मथुरा में यह प्रवचन दिया था जिसे आर. एस. नारायण स्वामी जी ने उस समय नोट किया था।)

आजकल 'परोपकार की भावना' की चर्चा बहुत कुछ सुनने को मिलती है। परोपकार एवं सहानुभूति से अभिसिन्चित हृदय वाले व्यक्ति दूसरों के उत्थान के लिये बहुत उत्सुक दिखाई देते हैं, उपदेश देने में सिद्धहस्त अनेक व्यक्ति हो-हल्ला मचाते है। वस्तुतः वे व्यक्ति दूसरों पर दया करने के रहस्य को भली-भाँति समझ नहीं पाते। अपने जीवन के मूल-तत्वों को आत्मसात् न कर पाने वाले ये 'परोपकारी' जब अपने आपको सुधार नहीं सकते तो उनसे दूसरों के उत्थान की आशा कैसे की जा सकती है? अंग्रेजी भाषा में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हैं—'First deserve, then desire' अर्थात, किसी भी आकांक्षा की पूर्ति के लिये सर्वप्रथम अपने आपको उसके अनुकूल बनाओ। इसके विपरीत वेदांत का यह सन्देश है—'Deserve and, you need not, desire' अर्थात अपने आपको अनुकूल अथवा योग्य बनाओ। तुम्हें इच्छा करने की जरुरत नहीं है क्योंकि पात्र होने पर सभी कुछ स्वतः प्राप्त हो जाता है। निरन्तर अभ्यास करते रहने से वह स्वयं शासक अथवा नियन्त्रक बन जाते हैं। उसे धन-धान्य, ऐश्वर्य, राज्य आदि स्वत: सुलभ हो जाते है, भले ही वह उनकी आकांक्षा न करता हो। अपनी ही सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए लालायित शासक को अपमानित तथा लज्जित होना पड़ता है।

कहते हैं कि एक बार एक महात्मा के पास बताशों से भरा एक थाल लाया गया। उसने एक श्रद्धालु भक्त से दो बताशे मांग लिये जबकि वह थाल उसे अर्पण किया जाना था। साधु के उतावलेपन से वह उपस्थित भक्तों की दृष्टि में गिर गया। इस किसी पदार्थ के लिए योग्यता होने पर भी उसके लिए लालायित होना अपने आपको अपमानित करना नहीं तो और क्या है?

उसके लिये हमें 'सीमित' अहम् को 'व्यापक' अहम् में प्रतिष्ठित करना होगा। एक का दूसरे में आत्मसात् हो जाने पर वह महात्मा समूचे भूमण्डल का ही नहीं वरन् 'ब्रह्माण्ड' का स्वामी बन जाएगा। उस स्थिति में विश्व भर के सभी पदार्थ, जिनके लिये कोई भी व्यक्ति आकांक्षा कर सकता है, स्वयं उसके चरणों में उपस्थित होकर उसकी प्रतीक्षा में खड़े रहेंगे कि कब उन पर दृष्टिपात करता है और जिसकी ओर भी उसने निहारा,

वह अपने आपको धन्य मानने लगेगा : तभी वह आप्त-काम महानुभाव निज सत्य-स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर परोपकार के लिये सनंद्ध होगा ।

संसार के उत्थान में तत्पर रहने वालों को पहले-पहल अपने आपको समुन्नत करने की चेष्टा करनी होगी । विज्ञान तथा भूगाल दोनों इस तथ्य की पुष्टि करते हैं । गर्मी पड़ने के कारण ऐसी स्थान की वायु गर्म होकर हलकी हो जाती है और ऊपर उड़ने लगती है । उस रिक्ति को भरने के लिये वहां के निकट स्थानों से वायु स्वयं उस ओर चलने लगती है और उन स्थानों के रिक्त होने पर वहाँ भी इर्द–गिर्द से वायु गतिमान होती है । इस तरह समूचे वातावरण में हलचल हो जाती है । जब तुम स्वयं उन्नत होते हो तो तुम्हारी इच्छा न होने पर भी अन्य व्यक्तियों को गति प्रदान करके उन्हें ऊपर उठने का अवसर दे देते हो । तुम्हारे उन्नत होने के परिणामस्वरूप तुम्हारे द्वारा रिक्त हुए स्थान पर कोई और पहुंच जाएगा और उसके स्थान को कोई अन्य व्यक्ति प्राप्त कर लेगा । इस प्रकार सभी गतिमान होकर अपने आपको एक पग और आगे पाऐंगे, इसे यह सिद्ध हुआ कि परोपकार से पूर्व आत्म–कृपा' का होना अनिवार्य है । पानी के गिलास में नमक की एक डली डालने से वह कुछ समय में घुलकर तदरूप हो जाएगी । आत्म-स्वरूप की 'असीम' उदधि में डुबकी लगाने वाला ससीम अहम् (मन) भी उसमें लीन हो जाता है । परमात्मा से एकत्व स्थापित कर लेने से तुम्हारी पृथक सत्ता का लोप हो जायेगा । जब वह व्यक्ति शरीर के बन्धन से मुक्त होकर परमात्म-सत्ता में लीन हो जाता है तो उसमें भी असीम शक्ति का अन्तर हो जाता है तथा उसकी सभी आकांक्षाओं की अपने आप पूर्ति हो जाती है ।

इसके लिए हृदय-पटल को आवृत्त करने वाली कालिमा का परिमार्जन करना होगा यदि जल रहे किसी दीपक को कागज से चारों ओर ढक लें तो उसके प्रकाश को बाहर निकलने में बाधा होगी, यदि उस कागज पर तेल लगाकर लपेटा जाय तो प्रकाश उसमें से छनकर बाहर निकलने लगेगा । ऐसे ही ज्ञानरूपी तेल से हृदय को चुपड़ने से आत्म-प्रकाश उसमें से निकलने लगेगा । इसलिये हृदय का 'पवित्र' होना नितांत आवश्यक है । मानव के भीतर व्याप्त चेतन-शक्ति, (जिसे प्रकाश–पुन्ज भी कहा जाता है) से मानव का विकास होता है । जीवों के क्रमिक विकास के सोपान पर सबमें ऊपर मानव का स्थान है तथा सबसे निचले स्थान पर निश्चेतन सृष्टि है । इस प्रकार मानव के विकास के लिए भी कई चरण हैं जिन्हें लांघने के बाद वह अज्ञान के निवृत्त होने पर ज्ञान के शिखर पर पहुंच जाता है । अन्त:करण 'मल' का लेप होने के कारण आत्म-प्रकाश प्रकट नहीं हो पाता । दूसरी अभिव्यक्ति के लिए हृदय का परिष्कृत होना जरुरी है। तब यह प्रकाश स्वत: सभी को प्रकाशमान कर देगा। तुम्हारे प्रकाश के कारण ही विकास-सिद्धान्त के विशेषज्ञ तुम्हें दूसरों की अपेक्षा अधिक समुन्नत मानने लगेंगे । इस कोटि की उन्नत-आत्माओं को हम सिद्ध, वली, पीर, पैगम्बर, अवतार की संज्ञा देते हैं ।

उस अवस्था को प्राप्त करने के लिये तुम्हें 'त्याग' का आश्रय लेना होगा। विश्व की धारा के विपरीत चलने से कोई सुधार नहीं कर सकता। इस सत्य को हृदयंगम करो।

हृदय की शुद्धि के साधन :

संसार के पदार्थों से सम्बद्ध प्रकृति के नियम मानव के हृदय की शुद्धि पर भी लागू होते हैं। सूर्य की रश्मियों (किरणों) में सात रंग विद्यमान हैं। भिन्न भिन्न पदार्थों के भिन्न रंगों में दिखाई देने का एकमात्र कारण सूर्य है। कमल की नीलिमा वास्तव में सूर्य की किरणों के कारण ही दृष्टिगोचर होती है। किसी पदार्थ पर जब सात रंगों वाली किरणे पड़ती है तो वह वस्तु तुरन्त छह रँग अपने भीतर रखकर एक रंग लौटा देती है। और वही रंग उस पदार्थ को दिखाने लगता है। ये सात रंग हैं—गुलाबी, नीला, आस्मानी, हरा, पीला, नारंगी और रक्त। इन सात रंगों में उन दो रंगों की गणना नहीं की गई है—काला और सफेद। श्याम (काला) वर्ण सभी सात रंगों को बचा लेता है और किसी एक का भी त्याग नहीं करता और इसके विपरीत श्वेत (सफेद) वर्ण किसी भी रंग को ग्रहण न करके सभी का उदारता से त्याग कर देता है। जब हम संसार के सभी पदार्थों को अपने पास न रखकर परमात्मा को अर्पण कर देते हैं तो हमारा हृदय शुद्ध (श्वेत), मल रहित (पारदर्शी) हो जाता है और आत्म-प्रकाश हमसे भिन्न दिखाई देने वाले पदार्थों को आलोकित करने लगता है। दूसरी ओर संसार की ओर सभी वस्तुओं का मन में संग्रह करते रहने से अर्थात मम (सीमित अहम्) के स्वार्थ, संसार की आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं आदि से दूषित होने से आत्म-प्रकाश अबोध रूप से प्रकट नहीं हो पाता अतः मन को लोभ-स्वार्थ और 'क्षुद्र' अहम् से कलुषित करने वाला व्यक्ति 'आत्मघाती' कहलाने लगता है।

इसलिये हृदय की शुद्धि के लिए आत्म-त्याग का होना अनिवार्य है। शास्त्रों का मत है कि धीर एवं सतत् अभ्यास में रत रहने वाले महात्मा संसार से अनुरक्त न होकर अमृत का पान करते हैं। आध्यात्मिक अमृत का पान करने के लिए अपने मन तथा हृदय को अपने प्रकाशक (विश्व पिता) को सूर्य के सदृश लौटा दो। तथा सब में उस व्यापक शक्ति के दर्शन करो। इससे तुम्हारी दृष्टि में पदार्थों का ज्ञान न रहेगा क्योंकि उनका अस्तित्व बने रहने से हम आत्म-स्वरूप से पृथक रहते हैं।

अतः हे सुधारकों ! इस उन्नतावस्था को प्राप्त करने के लिये तुम्हें संसार के स्थूल पदार्थों से ऊपर उठना होगा। उष्ण (गर्म) वायु के समान ऊपर उठने से दूसरों को सुधारकों की आवश्यकता न रहेगी और वे अपने आप उन्नत हो जायेंगे। प्रकृति के साम्राज्य में कही भी रिक्ति नहीं रहती तुम दूसरों को सुधारने के कष्ट से बच जाओगे। वे स्वतः उन्नत हो जाएंगे। इस अवस्था में तुम वन में विचरो या स्थान २ घूम कर दूसरों को अपने विचार प्रदान करो– तुम्हारे लिये यह एक समान है।

इसका तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम तुम अपना सुधार करो और दूसरों में सुधार लाने की चिन्ता मत करो

होली

—मंगलानन्द नौटियाल "अभागा"

होली की रुत भाई सांवरिया।

टाक पलास फूले अलबेला,
ब्रज-भानुजा घर घर डोले,
कब लौटोगे ब्रज बिहारी,
यमुना तट पे खड़ी गुजरिया।
होली········।

बन उपवन में सुरभित कलियां,
मधुकर करते है रंग रलियां,
प्रकृति नटी में ऋतुपति संग,
करली स्नेह सगाई संवरिया।
होली.........।

संग सहेली करे ठिठोली,
जिनकी रंग रंगीली चोली;
यह कैसी हरजाई माधव,
तक तक मारे लोग नजरिया।
होली········।

याद हो आते सांझ सकारे,
राधा डोले द्वारे- द्वारे;
डूबा गोकुल कौन उबारे,
कैसे आऊं ऊंची अटरिया,
होली·········।

पनघट तट पे रास रचा के,
भोली राधा को भरमा के;
मिल के बिछुड़ गये मनमोहन,

बीती जाये बाली उमरिया ।
होली········· ।

जग क्या समझे पीर पराई,
पड़ी न जिसके पैर बिवाई;
यह कैसी हरजाई माधव,
आंखों में घिर आई बदरिया ।
होली·········

सुरभित मंजरी, अमुवाडारी,
कोकिल कुहुंक उठी कजरारी;
विरह-व्यथा से हो के कारी,
सुध बिसराई बाँके संवरिया ।
होली········· ।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति और उसका औचित्य

★ श्रीमती लता कुमार ★

सृष्टि की रचना के साथ ही साथ नारी ने इस पृथ्वी पर कदम रखा और अपने समाज में उसकी दशा ऊंची नीची होती रही । किसी युग में तो वह महारानी लक्ष्मीबाई बनकर युद्धस्थल में नजर आई और कहीं सती सावित्री व सीता बनकर वन में घूमी । किसी समय तो उसका इतना प्रभाव रहा कि परिवार भी मातृसत्तात्मक बनने लगे और नारी की पूजा देवी के रूप में हुई और कोई वह समय आया कि वह घून्घट की आड़ में चारदिवारी के बीच रोती सिसकती करूणा की तस्वीर मात्र बनकर रह गई ।

अपने इस अवनति और उन्नति के शिखर पर चढती नारी आज जिस स्थान पर खड़ी है उसकी कोई एक स्थिति नही कही जा सकती । {कहीं तो नारी की स्थिति इतनी अच्छी है कि जीवन के सभी सुख

प्राप्त कर रही है और एक ओर दूसरी अपने अधिकार भी प्राप्त नहीं कर पा रही है।

वर्तमान समय में नारी ने पुरुषों के समान ही अधि-कार प्राप्त करे लिये है चाहे वह धार्मिक क्षेत्र हो, राजनैतिक

हो सामाजिक हो अथवा आर्थिक। किसी भी क्षेत्र में आज नारियां पुरुषों से अधिक ही दिखलाई देंगी और वह भी उन्नति के पथ पर।

परन्तु जिस स्थिति में आज हम नारी को देख रहे हैं उससे हम पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हैं। कहीं तो भारतीय नारी का इतना विकृत रूप सामने आता है कि यह सोचना पड़ जाता है कि क्या सीता, सावित्री, अनुसूया व गार्गी इत्यादि इसी देश की उपज थी। और कहीं इतना दयनीय रूप सामने आता है कि बरबस मन अपनी सभ्यता, अपनी विद्या और सांस्कृतिक लोगों की संस्कृति पर सन्देह होने लगता है।

वास्तव में नारी तो उस महाप्रकृति का नाम है जो पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिये शील तथा जीवमात्र के लिये करूणा संजोने वाली है। मगर आज की नारी हमें इस लीक से कुछ हटी हुई दृष्टिगत होती है। किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमारा समाज कुछ ऐसा बन चुका है कि ऐसी नारी को आज उसके द्वारा पागल, गंवार आदि नाना प्रकार की उपाधियों से विभूषित किया जाता है जो इस आगत लीक का अनुकरण करती हैं। अतः **आज की वर्तमान नारी के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह अपने घर की परम्परा के अनुसार ही अपने को इस रूप में ढाले कि समाज में उसका अस्तित्व बना रहे :**

वर्तमान नारी को इतने अधिकार कानून की ओर से प्रदान किये जा चुके हैं कि एक तरह से अभयदान मिल चुका है। इसका यदि उपयोग सही रूप से हो तो हमारा देश आशातीत उन्नति कर सकता है। क्योंकि नर नारी इस संसार रूपी गाड़ी के दो पहिए है। यह उचित नहीं है कि एक ही पहिये को अधिक महत्व दिया जाय और अन्य को उपेक्षित किया जाय।

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो किसी भी राष्ट्र की उन्नति और अवनति उसके प्रगतिशील होने या सुप्त होने के मूल में नारी का ही हाथ है। अतः स्पष्ट ही है कि जिस राष्ट्र में, जिस परिवार में, जिस समाज और जिस संस्था में भी नारी और पुरुष दोनों को समान महत्व दिया जायेगा उसकी उन्नति उसी प्रकार होगी जैसे कि एक कमरे में दो दरवाजे हैं और यदि उनमें से एक दरवाजा बन्द कर दिया जाय अर्थात नारी का ज्ञान अविकसित रहे और उसका दूसरा दरवाजा खोल दिया जाय तो प्रकाश तो अवश्य होगा परन्तु यदि दूसरा दरवाजा भी खोल दिया जाए तो प्रकाश अधिक हो जायेगा। इसी प्रकार समान विकास पर देश भी काफी उन्नति करेगा। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा कि बिना स्त्री जाति के कल्याण के किसी भी राष्ट्र का कल्याण असम्भव है।

परन्तु वर्तमान समय में नारी हमें बहुत कुछ पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नजर आती है। पाश्चात्य सभ्यता का अनुसरण बुरा तो नहीं यदि उसमें से केवल अच्छाईयाँ अपनाई जायें। परन्तु वर्तमान नारी आंखें मूंदे केवल अनु-करण करती हैं बिना सोचे कि उसमें क्या बुराई है।

हालांकि हम लोग अपने आपको काफी समझदार समझते हैं मगर अभी हममें यह बात नहीं है जो होनी चाहिए। प्रत्येक नारी यदि सीता, अनुसुया, गार्गी और सावित्री नहीं बन सकती तो कम से कम वह सिर्फ नारी का ही एक रूप तो बन सकती है। जिसे पति के लिए चरित्र, संतान के लिए स्नेह, जीवमात्र के लिये दयाभाव संजोने वाली और समाज के लिये शील रखने वाली महा-प्रकृति का नाम दिया जा सके।

अतः यह इस बात से कहीं ज्यादा उचित होगा कि नारी केवल अपने अधिकारों का प्रयोग स्वयं व परिवार के लिए न करके राष्ट्र और समाज की उन्नति के लिये करे।

प्रश्नोत्तर ★

—साधु वेष में एक पथिक—

प्र०—हमें किसी को वेषभूषा देखकर महात्मा मानना चाहिए या नहीं ?

उ०—नेत्रों से साधु-संन्यासी देखकर उस वेष को नमस्कार करो। देह से देह को नमन करते हुये उसके मन का, बुद्धि का अहंकार करते हुए यदि भीतर उसका मन विरक्त हो तब अपने मन को झुका दो। यदि उसकी विवेकी सिद्ध हो तभी बुद्धि से नमस्कार करो और जब अहंकार जगदाकार, विषयाकार, देहाकार न रहकर निराकार ब्रह्माकार दर्शित हो तब अपने अहंकार को उस अहंकार के समक्ष झुका दो। वाह्य दर्शन के साथ आंतरिक दर्शन आवश्यक है।

प्र०—सत्संगति को दुर्लभ बताया है, वह सुलभ कैसे हो ?

उ०—जिसे असत संग सुलभ दीखता है उसे ही सत्संग दुर्लभ प्रतीत होता है। कामी को असत संग सुलभ है, सत्संग दुर्लभ है, जो काम से विमुख होकर राम के सम्मुख होता है उसे राम की कृपा से सत्संग अति सुलभ है। देहादि विनाशी वस्तुओं का संग ही असत् संग है। विशुद्ध चेतन स्वरूप आत्मा का संग ही सत्संग है। असत् से विमुख होते ही सत्संग है। असत् से विमुख होते ही सत्संग निरन्तर सुलभ है।

"ॐ"

यथार्थ

१. पुत्रः—जो योग्य पुत्री नहीं बन सकती वह योग्य पत्नी भी नहीं बन सकती। वैसे ही पुत्र भी योग्य पिता नहीं यदि वह योग्य पुत्र न हो।

२. प्रतिकूलताः—प्रतिकूल परिस्थितियाँ दबाने नहीं, उठाने आती हैं। गरमी की लपटें दबे फल-फूलों को बाहर लाती हैं।

३. प्रश्नों का अन्तः—सारे प्रश्न आत्मा को सीमित समझकर ही फुदकते रहते हैं। आत्मा की व्यापकता देखते ही सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं।

४. प्रीतम से विनयः—प्रकृति ने दीन भाव में आबद्ध अपने प्रीतम से विनय की। "क्या तुम रूठे बैठे हो यहाँ ? चलो तुम बाहर आकर मुस्कराओ, तुम्हारे बिना हमें कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता। अब तुम्हारी हर सेवा के लिये, हर संकेत पर, सब कुछ उपस्थित है।

५. बतासेः—विश्व व्यापक प्रेम में, निवृत्ति योग में, ज्ञान निष्ठा में उमड़े हुये ये लोग बतासे हुआ करते हैं। ये अधिक दिन नहीं रहा करते। इनसे तो अपना दिल दिमाग मीठा कर लो और खुद बतासे बनने का प्रयत्न करो।

६. बदनामीः—अपने आप को आत्मा न समझना अपनी सबसे बड़ी बदनामी का ढ़ोल पिटना हैं।

७. बेनियमः—आवश्यकता बेनियम आती है। परन्तु उसका बेनियम आना भी आवश्यकता से खाली नहीं है।

—स्वामी तीर्थानन्द (अज्ञ)

अन्जाने में होली

प्रह्लाद विरत, वर से लिपटी
निज असुर भ्रात के कार्य लग्न
उस महा निशिचरी की ज्वाला में
प्रथमबिठा फिर ध्यान मग्न
वैष्णव प्रिय हरि को नतमस्तक हो नमन करो
फिर बोलो, भूलो, क्षमा करो
अब नहीं करेंगे हम त्रुटियाँ
अब तक अन्जान में होली

नव रंग, नया सब संग, नहीं कुछ भग
मिलन बिन जीवन बना अपग
मिलें न क्यों मिलकर खुद से
खड़ी जब स्वागतार्थ होली। -निर्द्वन्द्व

★ स्वामी राम का एक मिलाप

❀ श्री पं० सुन्दर लाल

इस सदी से ठीक शुरू में मैं लाहौर में पढ़ता था। स्वामी रामतीर्थ जापान और अमरीका जा चुके थे। उनके एक प्रिय शिष्य लाला हीरालाल, जिनका मुझ से नजदीकी सम्बन्ध था, शहर में रहते थे। मैं अक्सर उनसे मिलने जाया करता था। उनके पास जापान और अमरीका से स्वामी राम के खत आया करते थे। बहुत से खत उन्होंने मेरी प्रार्थना पर मुझे दे दिये थे। उनमें स्वामी राम की रची हुई बहुत सी अंग्रेजी, उर्दू और फारसी की नज्में भी थी। आज सोचकर दुःख होता है कि मैं उन्हें सम्भाल कर न रख सका और न ही इस समय कोई नज्म मुझे याद आ रही है।

स्वामी राम के दर्शन मुझे जिन्दगी में केवल एक बार हुए। वे अमरीका से लौट आये थे, मैं कालिज की छुट्टियों में अपने गांव खतौली जिला मुजफ्फरनगर आया हुआ था। मालूम हुआ कि स्वामी राम मुजफ्फरनगर आ रहे हैं। मैं घर का त्योहार छोड़कर मुजफ्फरनगर पहुँचा। ठीक दिवाली का दिन था, स्वामी राम अपने परम और बूढ़े शिष्य रायबहादुर निहालचन्द के यहां ठहरे हुए थे। हम लोग वहां पहुंचे।

बीच में आराम कुरसी रखी थी, हम लोग फर्श पर बैठकर इन्तजार करने लगे। थोड़ी देर में स्वामी राम जिनकी उम्र शायद करीब बत्तीस-तेंतीस के थी अपने बूढ़े मेजबान के साथ आये, आकर कुर्सी पर बैठ गए। सुनने वाले तकरीबन पन्द्रह रहे होंगे। स्वामी राम का लेक्चर हुआ मुझे वह उनका पूरा लेक्चर आज तक याद है। कुरसी पर बैठते ही उन्होंने पहले आंखे बन्द कर ली। पहले करीब दस मिनट तक वह बड़ी लय के साथ "ओ३म्-ओ३म" गाते रहे। जब वे गा रहे थे तो बिल्कुल ऐसा लगता था कि आवाज केवल गले से नहीं निकल रही है, बल्कि पैरों के नाखूनों से लेकर सिर की चांद तक एक एक अंग के अन्दर तार बोल रहे हैं। दस मिनट के बाद उन्होंने आंखें खोली और उसी तरह कुरसी पर पड़े पड़े यह शब्द कहे:—

"भगवन्! आज दिवाली है। लोग आज लक्ष्मी की पूजा करते हैं, पर लोग यह भूल जाते हैं कि लक्ष्मी विष्णु की पतिव्रता स्त्री है। विष्णु को छोड़कर लक्ष्मी कहीं जा नहीं सकती। लक्ष्मी की पूजा नहीं विष्णु की पूजा करो, लक्ष्मी अपने आप पीछे आयेगी।

बस इतना कहा और फिर आंखें बन्द कर ली। एक दो मिनट फिर "ओ३म् ओ३म" की धुन और आंख खोल कर खड़े हो गये। पांच चार मिनट जो लोग मौजूद थे उनसे हम हंसकर एक दो बातें की और तेजी के साथ घूमने निकल गये। उसके बाद मैंने फिर स्वामी राम को नहीं देखा। पर उनका वह तेज, उनके अन्दर बिजली की सी तेजी और तड़प मुझे हमेशा याद रहेगी। मैं रूहानि-

यत का मानने वाला हूँ । स्वामी राम को मैं दुनिया की ऊंची से ऊंची रुहानी हस्तियों में गिनता हूँ । वह सच्चे योगी थे उनका उर्दू रिसाला 'अलिफ' जिस पर लिखा रहता था "इक्को अलिफ तेरे दरकार" मैं भी बड़े प्रेम से पढ़ा करता था । उनके खास शिष्यों में मास्टर अमीचन्द, राय बहादुर बैजनाथ, नारायण स्वामी और पूरनसिंह से मेरा काफी परिचय था । इसमें कोई शक नहीं कि जिन थोड़े से हिन्दुस्तानियों ने पश्चिम के अन्दर; बल्कि दुनिया के अन्दर इस देश के नाम को फिर उजागर किया और चमकाया, उनमें स्वामी राम का स्थान बहुत ऊंचा और शायद रूहानियत की निगाह से सब से ऊंचा है । वे शायद इसी वजह से क्योंकि वे इतनी जबरदस्त रूहानी हस्ती थे व दुनियावी जंजाल से बिलकुल ऊपर थे । उनकी परम गति से थोड़े ही दिन पहिले जब कुछ बड़े बड़े लोगों ने हिन्दुस्तान से प्लेग को भगाने के लिये हरिद्वार में एक बहुत बड़ा यज्ञ रचा और स्वामी राम को उसमें आने की दावत दी, तो स्वामी राम ने साफ-साफ यह कहकर आने से इन-कार कर दिया कि देश से प्लेग को निकालने का तरीका हवन नहीं है बल्कि उन्होंने जवाब में यज्ञ करने वालों को यह समझाया कि जितना रूपया वे घी और सामग्री फूकने में खर्च करेंगे उसके चने खरीदकर देश के गरीब "नारायणों" में बांट दें तो ज्यादा लाभ हो । फिर साइन्स की रूह से दलील को काटा कि इस तरह के हवन से हवा शुद्ध होती है या बीमारियों के कीड़े मरते हैं । स्वामी राम के उस खत के आखिरी शब्द ये थे ।

But you will say we must perform the yajna as the Shruti says we must perform it, as the Smriti says we must perform it. Damn your Shruti and damn your Smriti. For Gods sake give sucking the dry bones of your Shruti ! what Rama Says is right and not what Shruti says is right !"

इन शब्दों के कहने का अधिकारी स्वामी राम जैसा पहुंचा हुआ योगी ही हो सकता है ।

मैं कहां से कहां पहुंच गया, जो आदमी अमेरिका के प्रेज़ीडेन्ट से कह सकता था—"Rama is kind enough to bestow on thee, my Child ! these few papers".

जो पहाड़ पर से धड़ाधड़ पत्थरों के टूट टूटकर सर पर गिरने पर यह कह सकता है—"इस आफत की भी जान मैं ही तो हूँ !" जो हिमालय के तंग दर्रे में रीछ के जोड़े को जाते हुए देखकर, दोनों के ऊपर हाथ रखते हुए दोनों में प्यार के साथ रगड़ते हुए बीच से निकल जा सकता था, जो गा सकता था—'बादशाह दुनिया के हैं मोहरे मेरी शतरंज के" जो मौत की बाबत कह सकता था— 'मौत को मौत न आ जायेगी, कस्द मेरा जो करके आयेगी ।' वह सचमुच अमरत्व प्राप्त कर चुका था । स्वामी रामतीर्थ पर इस देश और मानव समाज को नाज़ है ।

★

शोक समाचार

समस्त राम प्रेमियों को सूचित करते हुये अत्यन्त दुःख होता है कि श्रीमद्भावद्-गीता के प्रचारक तथा भक्त लखनऊ निवासी सेठ श्री कृष्ण दास जी खुनखुन का २४.२.७७ को स्वर्गवास हो गया है । राम दरबार उनकी अन्तरात्मा की शान्ति के लिए परमात्मा के चरणों में प्रार्थना करता है ।

Where lies the charm ?

-- *Swami Rama*

A very wealthy merchant in India was at one time going to give a grand feast to the people living in his city. To the grand feast often invited a bevy of dancing girls. The custom is now being given up in India, but at one time it was prevalent in full force.

One of the girls began to dance and sing. She sang a song which was awfully lewd, awfully bad, a song which nobody would have enjoyed, and still on that particular occasion, the song sank deep in to the hearts of the whole audience. What was the lesson? You know learned men and young gentlemen in India never like such bad songs, vulgar songs; but on that occasion the song so much insinuated itself into the hearts and souls of the audience that they were enreptured by it. Months and months after that occasion, most of the learned scholar's who heard that song once were seen walking through the streets humming it by themselves, and gentlemen were whisltiing it to themselves. And all of them, who had once heard it, were loving the song and liking it, were cherishing it and nourishing it in their hearts.

Here the question is, in where lay the charm ? Ask any one of those people who heard the song, in what lies the charm, and what is it that makes the song so dear to you ? All these will say, the song is so beautiful, oh, the song is so sweet, oh, the song is so ennobling, so elevating, the song is very good. But it is not so. The same song was abourinable to them before they heard it sung by this dancing girl, but now they like it. This is a mistake. The real charm lay in the tone, the face, the looks, the appearance and the manner of singing employed by the girl The real charm lay in the girl, and that real charm was transferred to the song.

That is what happens in the world. There comes a teacher who has a very sweet face, who has got very sweet eyes, who has a beautiful nose. His voice is very clear and he can throw himself this way and that way, oh, what ever he says is beautiful, is most attractive, oh, it is so good. It is so charming. That is the mistake made by the world. **Nobody examjne the truth by itself.** Nobody thinks anything of the song. It is the acting or the way of putting things, or it is the manner of speaking, the delivery, it is the charm in the outward things, so dear, so lovely to the audience.

Although the charms really lie with in yet people deceive themselves believing it to be out side.

The play of the world lasts only so long as we do not assert our authority and give up attaehment; because the attachment makes the world real and not a play, where as the assertion of authority brings the play to an end.

Children Learn
What they Live

If a child lives with Citicism, he learns to Crondemn,
If a child lives with Redicule, he learns to be Shy,
If a child lives with Shame, he leaves to ful Guilty,
If a child lives with Tolerence, he learns to be Patient,
If a child lives with Encouragement, he learns confidence
If a child lives with Praise, he learns to Appreciate,
If a child lives with Fairness, he learns Justice,
If a child lives with Security, he learns to have Faith,
If a child lives with Approval, he learns to like himself
If a child lives with Acceptance and Friendship,
He learns to find Love In the world,

—Rajeev Aggarwal

Vedanta-
The Sorce of Eternal Bliss

- Swami Hariom -

Vedanta can be profiitably utilised by every one in this universe. After all every body suffers from some 'desire'. According to Vedanta the very spirit 'to desire. halts 'fulfilment of desire'. So Vedanta says to rise above desire. At times people find that when they give up all hopes to get things they achieve them, why ? because unconsciously, they practise Vedanta.

When sun-rays fall at any place, it gets lighter. The moment air gets into upper strata immediately fresh air rushes into fillup the gap, similarly, when man rises alove desire, a vaccum is created. And it is the law of creation that the newdesire is attracted to the place vacated by the 'desire' Previously.

The entiere universe is as such created of two main forces positive and negative. All the things regarding desire have negative potentialities. When vaccum is created, it gets full of germs that have positive potentialities. Automatically, the desire which is negative, is drawn towards this positive energy created. That is what explains "Nishkam Karam Yoga" We know that Gita has prescribed, One of the sure cures and that is seeking the truth bare truth and nothing else. The thougts arising among us create germs, vibrations and atmosphere. They are powerful-powerful enough to destroy weaker germs. That is why real saints and yogis are immune of diseases; For they constantly meditate over pure and good thoughts; good actions and good deeds.

When Gita stresses "Yogan Karmasu Kaushalam"—it meams business unless you do not absorb yourself one with the work, the perfection can never be attained. So long the craving is attached with the work, it constantly vinders the concentrations vedanta gives you more things-while working you may realise a kind of happiness and peace. It has power to refresh while working you may realise a kind

of happiness and peace. It has power to refresh while working unless you nourish your body, mind and soul in balanced proporption, you can never feel wholesome and fully satisfied This is the secret of untiring energy that great leaders, 'yogis' and saints possess through Vedanta.

We must imbile fundamental truth of creation. The universe was created out of "Sankalpa,". Unless we remember the infinite unless we try to make one with unlimited, how can we serve him if we limit ourselves in one desire. "Knock the door and it shall be opened to you" you must knock at the proper point. When you are lost with the "Limit less," Subordinate things, like 'desire', stay at your service. Hence, there is the preaching—"Action is thy duty, desire not thy concern".

Who does not strike after happiness ? Vedanta offers you a very practical prescription. In one word it can be said "Love This we learn from a child. Why does the child has full access with the things, with whom it comes in contact? because, it is love in itself, "*Love knows no fear*" *you can conquer whole world not by sword but by love*: *Solong a man connot love its neighbour, he cannot have peace and happiness*. When alone you feel another's difficulty your own real love throves into yourheart When you feel every one as your own, then alone you rise above selfish spirit and earn broad mindedness. Why are people getting increasingly distressed? If you do good, good is returned to you. Vicious circles of pleasantness and unpleasantness go on for ever. Love has taken its seeding only on the ground of purity. So long you are imbedded with impure thoughts mind is bound to be baffled and then, true concentration is far-off cry. This is why Buddhism lays great emphasis over pure thoughts. Thought is, as much, the greatest, contributing factor. A photographres's lences may not illustrate you actually, but your every thought is imprinted on your face. In fact, this imports its ability or otherwise in to your each and every view. Dr. Saruapalli Radha Krishna says it was said that man made History. But it were realy ideas that made men" we have to take care of our thoughts It must be rememberedt that good is a great factor. *As you eat so you become when we live to eat and not eat to live. we fall from the summint of vedanta. The control of tongue means automatic control of mind and body.* When you regulate your life, you get staming to control your appetite and diet. Doing every work in the time, is great secret. That is why Swami Rama tirtha told that *India's decline was dueto its fall from the summit of Vedamta.*

The Philosophy of And by Swami Brahmanand

-MA, LL.B, Aavocate-

The Body we have and perceive is the first apparent aspect in its realm that requires most biological necessaties for the sake of preservation whereby to hold on. It is undoubte a very finc network of bones, muscles covered and conjoined by countless efferent nerves and veins having very many importent organs and limbs full of sap and semen, blood and marrow, all sorts of gases, chemical factors and matabolism etc are perpetually at work. In order to have a strong temper and vital power now and then the body however needs some support or the other from without as well as from with in. On demaned it also attends and responds to the stimuli. Hunger, thirst, heat cold etc., are paid due attention with proper supply of appropriate provisions, namely, food, drink, air and fire etc.,. If we somehow do not get required provisions or fail despite our best possible effort to acquire them, as it were, we are at loss of energy consequently we feel sophosticated, the entire structure becomes dulland, senses decline to attain any objects, and so it becomes dfficult to hold on. Everything loses its charm, fascination and beautitude. Nothing appeals us when we are not well fed etc. Thus we see body is most essential faector in our life but cartainly within its own domain. Body is verily compared with a chariot and vehicle-means.

We are born with more or less certain natural instincts and do understand the most fundamental principles of our life but even then the intellect, on extraordinary faculty if developed and trained with the accurate care, leads and guides us to unfold concealed characteristic qualities, mould, amend and give the pattern to the crude ideas, whether a priori, innate or derived in character, modify and refine the principles alrady known by instincts. We are endowed with many useful and wonderful faculties with the help of which we can manipulate any thing we want. Speech is certainly most wonderful faculty but what to be spoken we have to initate, affiliate, mould, improve and appropriate the equipments i.e., the pair of lips, the rows of tooth rnd tongue etc. in accord with invironment we dwell. Verily the experienced people intiate us to pick only certain tones, word, phrases and sentences recognized by the society we live in. Besides we are alawys warned to ban and banish tones, words and phrases etc., unwarranted. Thus we learn or imitate every thing by and by to distinguish between alternations, take right road and reject wrong path then and then we are able to secure infallible success. Intellect is not the monopoly of human being it is found in any and every animel. It is no doudt most significant and inevitable too, otherwise the person is very often ascribed with the qualification of a donkey or an idiot. But on the whole it must be borne in mind the intellect as such can maintain distinction and discrimination only within its own kingdom, it can never go beyond its boundary or limit. Its greatest function is to hold control over the mind and supply with the convenient knowledge. As already has been observed that body said to be chariot but without some one it cannot be driven hence intellect is compared with the driver.

(Contd. on next issue)

★ आश्रम समाचार ★

परम पूज्य प्रात: स्मरणीय परमाध्यक्ष जी महाराज ने कुम्भ पर्व पर स्वामी राम के विचारों के प्रचारार्थ जिस आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया था उसमें प्रयाग निवासी रामप्रेमियों के सहयोग से पूर्ण सफल रह सबको आशीष दे ९ फरवरी को प्रयाग से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

दिनांक १० फरवरी को मुनि हरभिलाषी जी, के सम्मेलन में जो पानीपत में आयोजित किया था, भाग ले आप स्वामी सूर्यप्रकाश जी महाराज द्वारा आयोजित हापुड़ सम्मेलन में सम्मिलित हुए। गढ़मुक्तेश्वर के पावन स्थल पर दिनांक १४ फरवरी को स्नान कर आप १५ को अलीगढ़ में श्री चिमन लाल जी बग्गा के नये मकान का उद्‌घाटन कर नरवर गगातट होते हुए २० को पुन: दिल्ली पधारे।

शकूर बस्ती रानीबाग दिल्ली में ५२७ गज जमीन का टुकड़ा माता मेला देवी जी ने स्वामी रामतीर्थ मिशन की नव शाखा के निर्माण हेतु दान स्वरूप स्वामी रामतीर्थ मिशन को समर्पित किया। इस नव शाखा का उद्‌घाटन दिनांक २१-२-७७ को महाराज श्री के करकमलों द्वारा स्वामी हंसप्रकाश जी, स्वामी अमर मुनि जी, स्वामी सूर्यप्रकाश जी तथा स्वामी गुरुशरणानन्द जी आदि महापुरुषों की उपस्थिति में हुआ। तदन्तर आपने भगवान आशुतोष शिव की मूर्ति प्रतिष्ठा में, जिसकी स्थापना गीता भारती जी अहमदाबाद गुजरात में करवा रही है, भाग लेने हेतु दिल्ली से अहमदावाद की ओर वायुयान द्वारा प्रस्थान किया। वहां से रामपुरा, फूलमण्डी होते हुए आप १ मार्च से ६ मार्च तक मोगा सम्मेलन में सम्मिलित हुए।

यदि कार्यक्रम में परिवर्तन न हुआ तो आचार्य प्रवर के मार्च द्वितीय सप्ताह में देहरादून पहुँचने की सूचना प्राप्त है।

देहरादून—

रविवारीय सत्संग में समस्त रामप्रेमियों ने स्वर्गीय राष्ट्रपति को मौन रहकर अपनी श्रद्धान्जलि समर्पित की। हरिॐ सत्संग सभा, की सचिव ने स्वर्गीय राष्ट्रपति की जिनका देहान्त ११ फरवरी को प्रात: ८ बजकर ५२ मिनट पर हुआ था, गौरवमय जीवन की घटनाओं को उपस्थित करते हुये राष्ट्रहित कार्यरत होने की ओर संकेत किया।

यहां कार्यरत प्रकृति कभी कभी उन्मीलितावस्था में जीवनगति को देख ठन्डी और शीत सांस लेती हुई आंसू बरसा देती है। हार्दिक संवेदना के कारण इसके अन्तर की बाज ज्ञात करना कुछ असम्भव सा ज्ञात होता है।

— सह सम्पादक

Phone No. 84225 Rajpur तार का पता (वेदान्त) देहरादून. Regd. No. D. N. 15

राम-हृदय

साक्षात्कार एक ही छलांग में नहीं हो सकता। उसके लिये समय की आवश्यकता होती है। इस नर-देह के विकास तक पहुंचने में ही हमें करोड़ों वर्ष लग चुके हैं।

* *

वेदान्त के अनुसार कोई ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता जब तक उसका समस्त जीवन सार्वभौमिक प्रेम में बदला नहीं जाता, जब तक वह सारे जगत् को अपने शरीर में नहीं मानने लगता। कदापि नहीं, कदापि नहीं।

* *

शिशु सीधे युवा कैसे हो सकता है? उसे किशोरावस्था तो पार करनी पड़ेगी। ठीक इसी प्रकार जो मनुष्य ईश्वर के साथ तदात्म होना चाहता है, पहले समूचे राष्ट्र के साथ ऐक्यभाव को उसकी नस-नाड़ी में जोश मारना ही चाहिये।

* *

मुक्ति का मार्ग साक्षात्कार का पथ है प्रकट मृत्यु। इसके सिवा और कुछ नहीं, अनुभव का और कोई मार्ग नहीं है।

* *

शरीर-भावना पुण्य-भावना के बिल्कुल विपरीत है और नाश का सबसे सीधा मार्ग है

+—+

बुक पोस्ट

ग्राहक संख्या ...

श्री/श्रीमती ...

स्थान ...

डाकखाना ...

ज़िला ...

मासिक पत्र—

"राम-सन्देश"

राजपुर Pin-248009

देहरादून (उ. प्र.)

Printed and Published by Swami Govind Prakash, at the New Ideal Printing House 4-B, Nashville Road, Dehra Dun for the Rama Tirtha Mission Rajpur, Dehra Dun, (U.P.)

राम-सन्देश

जून १९७७

एक प्रति
भारत में ८५ पैसे, विदेश में १ रु०

वार्षिक भेंट
भारत में १० रु०, विदेश में १२ रु०

आजीवन सदस्यता शुल्क :
भारत में —१००/-, विदेश में —५००/-

—संस्थापक—
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज

—व्यवस्थापक—
आचार्य स्वामी गोविन्दप्रकाश जी महाराज

संकेतिका

—सूचना—

१—मासिक पत्रिका 'राम सन्देश' न मिलने पर अपने समीपस्थ डाकखाने (पत्रालय) से पता करने के पश्चात् हमें सूचित करें। क्योंकि कभी कभी किसी कारववश "रामसन्देश" १५ ता० तक निकलता है। इसलिए शिकायत पत्र अपनी अपनी ग्राहक संख्या सहित दिनांक २० के बाद प्रेषित करने का कष्ट करें।

२—कृपया आप १९७७ का १० रूपये चन्दा शीघ्र शीघ्र भेजने की कृपा करें। यदि आपने १९७६ का शुल्क प्रेषित नहीं किया, तो वह भी साथ ही भेज दें।

३—आप आश्रम में किसी भी प्रकार का धन भेजते समय यह लिखना न भूलें कि यह धन किस निमित्त भेजा जा रहा है।

४—यह प्रार्थना है कि जो पाठक इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं वे अपना सदस्यता शुल्क सम्पादक के नाम प्रेषित करें। सदस्यों को आजीवन पुन: किसी भी शुल्क के बिना यह पत्रिका प्रेषित की जायेगी।

— सम्पादक

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)

सह सम्पादक—
काका हरिॐ "निर्द्वन्द्व"

व्यास-पूर्णिमा

महोत्सव

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।

सर्व रामप्रेमियों को सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि गतवर्षों की भांति इस वर्ष भी व्यास-पूर्णिमामहोत्सव का आयोजन स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून में दिनांक १ जुलाई १९७७ तदनुसार शुक्रवार को किया जा रहा है । कार्यक्रम प्रातः ७ बजे से प्रारम्भ हो जायेगा जिसमें क्रमशः समाधिपूजन, गीतापाठ, हवन आदि के बाद महापुरुषों द्वारा गुरु-शिष्य के आध्यात्मिक सम्बन्ध पर विचार सुनने को मिलेंगे ।

अतः इस शुभ अवसर पर राम दरबार आप सब रामप्रेमियों को भी आत्मरूप गुरुदेव के श्री चरणों में श्रद्धा के पुष्प समर्पित करने के लिये सप्रेम आमन्त्रित करता है ।

—सम्पादक

धर्म और सदाचार

किसी धर्म को इसलिये अंगीकार मत करो कि वह सबसे प्राचीन है । उसका सबसे प्राचीन होना उसके सच्चे होने का कोई प्रमाण नहीं है । कभी कभी पुराने से पुराने घरों को गिराना उचित होता है और पुराने वस्त्र तो बदलने ही पड़ते हैं । यदि कोई नई से नई सूक्ष्म विवेक की कसौटी पर खरी उतरें, तो वह उस ताजे गुलाब के फूल के समान उत्तम है जिस पर चमकती हुई ओस के कण शोभायमान हो रहे हों ।

★ ★

किसी धर्म को इसलिये स्वीकार मत करो कि वह सबसे नया है । सबसे नई चीजें समय की कसौटी पर परखी न जाने के कारण सदा श्रेष्ठ नहीं होती ।

समय यह लिखना न भूलें कि यह धन किस निमित्त भेजा जा रहा है।

४— यह प्रार्थना है कि जो पाठक इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं वे अपना सदस्यता शुल्क सम्पादक के नाम प्रेषित करें। सदस्यों को आजीवन पुनः किसी भी शुल्क के बिना यह पत्रिका प्रेषित की जायेगी।

— सम्पादक

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)

सह सम्पादक—
काका हरिॐ "निर्द्वन्द्व"

★ ॐ ★

'राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'
—स्वामी राम

वेदान्त, अध्यात्म, संस्कृति, धर्म एवं भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा
स्वामी राम के आदर्शों का उपस्थापक, एकमात्र लोकप्रिय मासिक

राम-सन्देश

वेदोपनिषदां तत्त्वम् सत्यं नित्यं सनातनम्।
तत्सर्वं "रामसन्देशे" पत्रेऽस्मिन्नवलोक्यताम्॥

वर्ष २६ अंक ६	राजपुर-देहरादून—जून १९७७	वार्षिक शुल्क : १० रु०, एक प्रति-८५ पै०,

धर्म और सदाचार

किसी धर्म को इसलिये अंगीकार मत करो कि वह सबसे प्राचीन है। उसका सबसे प्राचीन होना उसके सच्चे होने का कोई प्रमाण नहीं है। कभी कभी पुराने से पुराने घरों को गिराना उचित होता है और पुराने वस्त्र तो बदलने ही पड़ते हैं। यदि कोई नई से नई सूझ विवेक की कसौटी पर खरी उतरे, तो वह उस ताजे गुलाब के फूल के समान उत्तम है जिस पर चमकती हुई ओस के कण शोभायमान हो रहे हों।

★ ★

किसी धर्म को इसलिये स्वीकार मत करो कि वह सबसे नया है। सबसे नई चीजें समय की कसौटी पर परखी न जाने के कारण सदा श्रेष्ठ नहीं होती।

गतांक से आगे:—

व्यावहारिक वेदान्त

उन्नति का मार्ग

[२४ सितम्बर १९०५ को दिया गया व्याख्यान]

कदाचित् यह कहा जाय कि हम अपने धार्मिक सिद्धान्तों की पाबन्दी करते हैं, और धार्मिक सिद्धान्त चाहते है कि झगड़ा किया जाय। इसका उत्तर यह है कि धार्मिक सिद्धांतों का उद्देश्य कदापि लड़ाई झगड़ा करना नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्म का पहला सिद्धान्त यह है कि ईश्वर को जानो और मानो। क्या आप इस पर आचरण करते हैं ? कदापि नहीं। यदि आप इस पर चलते होते, तो क्या आप परमेश्वर की इतनी भी परवाह और इज्जत न करते जितनी कि आप अपने कलेक्टर की करते हैं। यदि इस समय इस जलसे (समारोह) में कलेक्टर साहब आ जायं तो सबकी सांस बन्द हो जायगी। प्रत्येक समय इस बात का ध्यान करेंगे कि कोई भद्दा वाक्य मुख से न निकल जाय अथवा कोई निर्लज्ज चेष्टा न हो जाय। आप कभी कलेक्टर साहब के सामने चोरी न करेंगे, कभी उनके सामने किसी स्त्री को कुदृष्टि से न देखेंगे, और न उनके सामने कोई खराब वार्ता करेंगे।

बबीं तफावत रा अज कुजास्त ता बकुजा !

अर्थ—देखिये, एक से दूसरे में अन्तर कितना है।

आपका धर्म सिखाता है कि परमेश्वर सर्वत्र विराजमान है। किन्तु शोक और रोना आता है कि आप इस बात को जानकर भी हर प्रकार की पूर्वोक्त बातें करते हैं. और आपके मन में तनिक भी ईश्वर का भय नहीं आता है। यदि हम लोग परमेश्वर के अस्तित्व को मानते और जानते होते, तो उसकी उपस्थिति में स्त्रियों की ओर तकते हुए आँखें फूट न जातीं, झूठ बोलते समय जबान न निकल पड़ती ? ब्रह्मश्रोत्रिय को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये। यदि आचरण न हुआ, तो विद्या व्यर्थ है, वरन् हानिकारक है। मस्तिष्क की नसें जो ज्ञान को ग्रहण करती हैं, उनको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं और जो नसें भीतर के ज्ञान को व्यवहार में लाती हैं उनको कर्मेन्द्रिय कहते हैं. और स्वास्थ्य की दशा स्थिर रखने के लिए समस्त इन्द्रियों को काम में लाना जरूरी है, अन्यथा परिणाम अच्छा न होगा। जो ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ नहीं होते,

उनकी यह दशा होती है कि वे विद्या को भीतर ठूँसते जाते है, किंतु उसको बाहर नहीं निकालते हैं, अर्थात् एक प्रकार की इन्द्रियों से काम लेते हैं, और दूसरे प्रकार की इन्द्रियों को बेकार रखते हैं। इनको आध्यात्मिक कब्ज और बुद्धि का अजीर्ण हो जाता है। इसी के कारण वे लड़ाई-झगड़े में पड़ते रहते हैं। अतः शर्त यह हुई कि संसार में सफलता होने के वास्ते हमको चाहिए कि जितनी बुद्धि हमारे पास है, उसे केवल अकेली (तर्कशाली) ही न रक्खें, वरन् उसको व्यावहारिक भी बनावें। सफलता की दूसरी शर्त यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, चाहे आप नई रोशनी (विचार) के हों, या पुरानी रोशनी के; चाहे आपकी पुस्तकों ने उस पर जोर दिया हो अथवा न दिया हो, कुछ परवाह नहीं है। राम आपसे यह कहता है कि सफलता के लिये पवित्रता और ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि भारतवासी बचे रहना चाहते हैं, तो वीर्य को सुरक्षित रक्खें, अन्यथा कुचले जायेंगे। यह दीपक सामने जल रहा है, यह क्यों जलता है ? इसके बीच के भाग में तेल भरा हुआ है। यह तेल बत्ती द्वारा ऊपर चढ़ता है, और ऊपर आकर प्रकाश-रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि इसके तेल वाले भाग में कोई छिद्र हो जाय, तो उसका तेल धीरे-धीरे बह जायेगा, और फिर इससे प्रकाश न निकल सकेगा। यही दशा आपकी है। यदि आपके भीतर का वीर्य न गिरेगा, तो यह ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में जाकर आत्मिक ज्योति बन जायगा। किन्तु यदि आप इसके विरुद्ध करेंगे, अर्थात् अपने वीर्य को गिरायेंगे, तो आप की यही दीपक सी दशा होगी। जिन लोगों के शरीर से कोई अपवित्र कर्म नहीं होता या जिनके मन में कोई अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होता, उनका वीर्य ऊपर चढ़कर बुद्धि में परिवर्तित हो जाता है। ऐसी ही अवस्था को इंगलैंड के प्रसिद्ध कवि ने यों वर्णन किया है—

My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure. (Bennyson)

मेरी शक्ति है दस गुणी किसलिए,
कि मेरा हृदय शुद्ध है इसलिए।
दस ज्वानों की मुझमें है हिम्मत;
क्योंकि मुझमें है इफ्फतो-अस्मत।

हनुमान सबसे बड़ा वीर किसलिये था ? क्योंकि वह यति था। कहते हैं कि मेघनाद बड़ा योद्धा था। उसको वही व्यक्ति मार सकता था, जिसके हृदय में १२ वर्ष तक कोई अपवित्र विचार न आया हो। वह कौन व्यक्ति था ? यह यह श्री लक्ष्मण जी थे। भीष्म का नाम भीष्म इसी कारण से पड़ा कि वे जितेन्द्रिय थे। सर आइजक न्यूटन जैसा प्रसिद्ध तत्वान्वेषक, जिसके ऊपर आज इंग्लैंड को इतना अभिमान है, ८७ वर्ष तक जीवित रहा। मरते समय तक उसके होश हवास बहुत ही ठीक थे, क्योंकि वह जितेन्द्रिय था, और अत्यन्त पवित्र था। जिस तत्ववेत्ता ने संसार के तत्वज्ञान को पल्टा दिया, वह कौन

था ? वह कैन्ट (Kant) था । वह बड़ा भारी यति था । इसके मन में कभी अपवित्र विचार तक नहीं आया। अमेरिका के हेनरी डेविड थोरो (Henri Devid Thoreau) और जर्मनी के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) दोनों बड़े जितेन्द्रिय थे। इस समय अमेरिका, इंग्लेंड, जापान आदि देश उन्नति कर रहे हैं, इसका क्या कारण है? कारण यह है कि इनके यहाँ के गृहस्थ भी आपके यहाँ के जितेन्द्रियों से अच्छे हैं। प्रथम तो उनके विवाह २० वर्ष के पश्चात् होते हैं. फिर उनकी स्त्रियाँ कैसी शिक्षिता होती हैं कि जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं तो उत्तमोत्तम विषयों पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे के सत्संग से लाभ उठाते है. कभी अपवित्र बिचारों का अवसर नहीं आने पाता । इसके विरुद्ध आपके यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षिता नहीं होती। आपके यहाँ पुरुष और स्त्री की भेंट के अर्थ ही अपवित्र विचार है। और ठीक भी है जब वह कुछ जानती ही नहीं, तो आप उससे क्या बातें करेंगे सिवाय अपवित्र बातों के। अपने नित्यप्रति के जीवन में देखो कि पवित्रता का आपके कामों और संकल्पों पर क्या प्रभाव होता है। यदि आप अपने वीर्य (sex energy) को सुरक्षित रक्खे हुए हैं, तो आप बहुत शीघ्र कृतकार्य होंगे । राम जब प्रोफेसर था, उनका निजी अनुभव क्या था ? और जिस समय राम सफल था असफल विद्यार्थियों की सूची बनाता था और उससे पूछा करता था कि परीक्षा के कुछ दिन पहले उनकी क्या अवस्था थी? तो राम ने इससे भी परिणाम निकाला था कि जो विद्यार्थी परीक्षा से पहले उत्तम और पवित्र विचार रखते थे, वे कृतकार्य होते थे और जो अपवित्र विचार रखते थे और सदैव भयभीत रहते थे कि कहीं असफल न हों, वे अनुत्तीर्ण ही रहते थे। अतः सिद्ध है कि जैसे जिसके विचार हृदय के भीतर होते हैं, वैसा ही उसको परिणाम प्रकट होता हैं। इस बात का प्रमाण इतिहास से भली भाँति मिल सकता है।

क्रमशः

ईश्वर कहाँ है ?

भारत बन्धु शर्मा

स्वामी रामतीर्थ ने अपने एक प्रवचन में एक कथा द्वारा तीन प्रश्नों का अनूठे ढंग से उत्तर दिया। वह इस प्रकार है:—

मुसलमानों के शासन काल में एक बार एक काजी (वर्तमान राज्यपाल) को एक बादशाह के दरबार में जाने का सुग्रवसर मिला। शासक, जो स्वयं इतना विद्वान् न था, के मन में आगन्तुक की योग्यता परखने की इच्छा हुई। अत: उसने ये तीन प्रश्न किये। वे प्रश्न वस्तुत: एक अन्य व्यक्ति द्वारा सुझाये गये थे, जो स्वयं काजी के पद पर होने की लालसा रखता था–

(क) खुदा के बैठने की जगह कहाँ है,?

(ख) खुदा अपना मुंह किस ओर रखता है?

(ग) खुदा क्या करता है ?

सही एवं सन्तोषप्रद उत्तर मिलने पर उसकी पदो-

न्नति करके उसे वहाँ काजी बनाने का आश्वासन दिया गया।

इस धारणा से कि प्रश्नों के उत्तर अवश्यमेव जटिल होंगे, काजी ने एक सप्ताह की अवधि देने की याचना की। उसको यह भी बताया गया था कि समुचित उत्तर न मिलने पर उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। चाटुकारिता के एकमात्र शस्त्र से सुसज्जित वह व्यक्ति असमंजस में पड़ गया। वह चिन्तासागर में निमग्न होता रहा। समय व्यतीत होता गया, किन्तु उस उलझन का कोई मार्ग न दीख पड़ा। काजी का सेवक जिसे वह 'पाजी' कहकर सम्बोधित करता था, अपने स्वामी को चिन्तित देखकर बोला—"हुजुर! आपको किस फिक्र ने दबा रखा है, जो आप खाने-पीने, सोने-विश्राम करने आदि की क्रियाओं के प्रति इतने उदासीन दिखायी देते हैं। कृपया इसका कारण बतलायें, हो सकता है, उसमें मैं कुछ कर सकूं।" यह सुनकर काजी ने उसे वहाँ से चले जाने का आदेश दिया। वह स्वामिभक्त, डांट-डपट की परवाह न करके वहीं खड़ा रहा और हाथ जोड़कर बोला—"मालिक! मैं आपको इस दशा में देखना नहीं चाहता। मुझे आप जो भी दण्ड देंगे, मैं सहन कर लूंगा, लेकिन आपको चिन्ता का कारण बताना ही होगा, मैं तो आप पर अपने प्राण तक न्योछावर करने में अपना सौभाग्य मानूंगा।" जब उसे तीन प्रश्न सुनाये गये, तो वह बोला— "आप मुझे स्वयं बादशाह के सामने उपस्थित होने की अनुमति दें। शेष मैं सब कुछ सम्भाल लूँगा।"

उसके आग्रह पर, न चाहते हुए भी उसका स्वामी मान गया। इतने में अवधि समाप्त होने के कारण बादशाह का दूत आदेश लेकर वहाँ पहुंचा। शासक ने उसे बुला भेजा था। तब काजी के स्थान में उसका सेवक 'पाजी' दूत के साथ हो लिया। फटे पुराने वस्त्रों में उसे देखकर बादशाह को सन्देह हुआ, किन्तु वह विवश था। तीन प्रश्नों की जब वहाँ पुनरावृत्ति हुई, तो उत्तर देने से पूर्व उसने शासक से कहा—"आप इस समय प्रश्न पूछ रहे है और मैं उनके उत्तर देने के लिये यहाँ मौजूद हूँ। प्रश्नकर्त्ता के लिए शिष्यभाव से बैठना उचित है और उत्तरदाता 'गुरु' के समान होता है। हमारे मजहब (सम्प्रदाय) में शागिर्द (शिष्य) अपने उस्ताद से नीचे बैठता है। इसलिये अपना सिंहासन छोड़कर मेरे स्थान पर आ जाइये। मुझे वहाँ बैठकर प्रश्नों का उत्तर देना है।" बादशाह ने उसे नये वस्त्र पहनाने का आदेश दिया और और स्वयं नीचे उतर कर उसके स्थान पर जा बैठा। काजी का 'पाजी' सिंहासन पर जा बैठा और सभी मन्त्री, सम्मानित व्यक्ति, दरबारी आदि दांतों तले अंगुली दबा कर निश्चेष्ट बैठे रहे। वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। प्रथम प्रश्न पूछने से पहले उसे यह बता दिया गया कि शासक की शंका का पूर्ण समाधान न कर पाना जान से हाथ धो बैठना है। 'पाजी' ने यह शर्त तुरन्त मान ली। प्रथम प्रश्न था—खुदा के बैठने की जगह कहाँ है? सिंहासन से आदेश हुआ कि एक गाय यहाँ लाई जाय, गाय वहाँ ला कर खड़ी की गयी। 'पाजी' ने बादशाह से पूछा—

'इस गाय का दूध शरीर के किस भाग में मिलेगा?'

उत्तर मिला—'स्तनों में।'

वह बोला 'यह उत्तर सही नहीं है । दूध तो इसके सारे शरीर में मौजूद है ।'

आदेशानुसार गाय को लौटा दिया गया और कुछ दूध लाया गया,

पाजी—बताइये, क्या इस दूध में मक्खन है ?'

उत्तर—हाँ, है ।

प्रश्न—वह दूध के किस भाग में है ? मुझे उस हिस्से में मक्खन दिखाइये ।

बादशाह कुछ उत्तर न दे पाया । तब 'पाजी' बोला, "मक्खन दूध में है और व्यापक रूप से उसकी सत्ता का पता चलता है । मक्खन को दिखाने के लिये हमें दूध को 'दही' का रूप देना होगा और उसको बिलोने से ही हमें मक्खन के दर्शन होंगे । ठीक इस प्रकार जब तक हम अपने 'हृदय' का सही ढंग से मंथन नहीं करते, तब तक हमें उसमें सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के दर्शन नहीं हो सकते ।"

उस उत्तर से क्या बादशाह आश्वस्त हुआ है ? यह इत्मीनान कर लेने के बाद दूसरा प्रश्न लिया गया—

द्वितीय प्रश्न था—खुदा अपना मुंह किस ओर रखता है ?

इसका उत्तर देने के लिये एक 'प्रकाश' लाने का आदेश हुआ, एक जल रही मोमबत्ती वहाँ लाकर रख दी गई । उसकी ओर संकेत करते हुए 'पाजी' ने कहा—इस मोमबत्ती की रोशनी किस दिशा को प्रकाशित कर रही है ? पूर्व, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, प्रकाश तो सब ओर फैला हुआ है । इसी तरह हमारे हृदय को प्रकाशित कर रहा परमात्मा सभी ओर अपनी ज्वाला भेज रहा है ।

जब शासक इस उत्तर से सन्तुष्ट हो गया, तो 'पाजी' ने तीसरा प्रश्न लिया, जो इस प्रकार था:—

खुदा (ईश्वर) क्या करता है ?

बादशाह से उसने कहा कि आप स्वयं जाकर काजी को यहाँ लिवा लायें । शिष्यभाव से शासक उठा और काजी को अपने साथ दरबार में ले आया । काजी ने जब अपने सेवक को राजसिंहासन पर आसीन देखा, तो वह भौंचक्का-सा रह गया । काजी से उसने अनुरोध किया कि आप बादशाह के इस स्थान पर बैठ जायें और बादशाह को काजी के स्थान पर बैठने को कहा । जब सब अपने अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये तो 'पाजी' ने कहा:—यह जो कुछ हुआ है, सब खुदा ने किया है । वह सदा काम करता रहता है । उस की आज्ञा से ही मैं (पाजी) राज्यसिंहासन पर बैठा हुआ हूँ और बादशाह काजी की जगह पर है और काजी ने शासक का स्थान ले लिया है ।"

यह उत्तर सुनकर सभी उपस्थित व्यक्तियों ने पाजी की सराहना की । तब पाजी ने बादशाह से अपने सिंहासन पर बैठने की प्रार्थना की । अपने स्थान पर बैठते ही काजी ने सेवक को काजी के पद पर आसीन कर दिया गया । वास्तव में वह किसी अन्य विद्वान काजी की सेवा में रहकर असामान्य योग्यता प्राप्त कर चुका था । किन्तु उसने निरभिमानी होने के कारण कभी भी इस बात का रहस्योद्घाटन नहीं किया था ।

● बालसन्त स्वामी श्री सत्यदेव जी महाराज

यथार्थ दृष्टि जहाँ से मिलती है, उसे ही धर्म कह सकते हैं। यथार्थ दृष्टि वह है, जो दर्शन को जन्म देती है। मानव के समस्त मूल्यों का निर्धारण ही धर्म है। प्राचीन मनुष्यों ने प्रत्येक पदार्थ में उसके स्वभाव व गुणों के बीच जो सन्तुलन शक्ति है, उसे धर्म कहा।

धृञ धारणे धातु से धर्म शब्द सिद्ध होता है, इस प्रकार हम कह सकते है कि स्वभाव, कर्म, तथा जीवन को धारण करना ही धर्म है।

वस्तुतः किसी भी वस्तु या पदार्थ को क्या है, ऐसा प्रश्न करने के बजाय किसके पास है? ऐसा प्रश्न करना ही धर्म को अभीष्ट है। क्योंकि कोई भी कर्म या वस्तु स्वयं में अच्छे या बुरे नहीं होते, पदार्थों के गुण दोष अच्छे या बुरे व्यक्ति के सम्पर्क से ही जाने जा सकते हैं। राम के हाथ में अस्त्र हो, शक्ति हो तो वह देश, धर्म एवं समाज के लिये शुभ होते है। और यदि वह शस्त्र तथा शक्तियाँ रावण के हाथ में पड़ जाती है, तो मृत्यु व भीषणता को जन्म देती है। क्योंकि व्यक्ति का मानस कैसा है, उसके आधार पर ही धर्म की विवेचना कर सकते है।

इसलिये धर्म क्या है? यह प्रश्न करने के बजाय हम यदि यह पूछें कि धर्म किसके पास है, तो हमें ज्यादा शीघ्रता से अनुकूल उत्तर मिल सकेगा।

कारण यह है कि धर्म एक सार्वभौमिक सत्ता है। अथवा सर्वोच्च सत्ता परमात्मा का विधान धर्म है। प्रत्येक प्राणी मे जो जीवन की लालसा और सुखोपभोग की आकांक्षा है, वही है धर्म। इन आकांक्षाओं को लेकर ही हम धर्म के कई भेद, प्रभेद, तथा मत-भेद खड़े कर देते है। क्योंकि अपनी रुचि को हम धर्म मानकर सर्वव्यापकत्व को परिच्छिन्न दशा में परिणित कर स्वयं को दुःख के जाल में धकेल देते हैं। हमारे स्वार्थ का सदा से प्रयास रहा है कि प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति मेरे अनुकूल हो, परन्तु ऐसा होना तो असम्भव है। धर्म यह कहता है, कि तुम सबके अनुकूल बन जाओ। यह सरल भी हैं और सुगम भी। तुम, स्वयं के मानस में दिव्य गुणों का विकास कर सबको उनके प्रकाश से आलोकित करो, यही धर्म को अभीष्ट हैं। मैं देखता हूँ कि अपने स्वार्थ के और अपनी मन-मर्जी के अनुरूप बिना देश, काल, समाज का विचार किए हमने धर्म को बराबर घसीटने की चेष्टा की है। उसका परिणाम यह हुआ कि हमारे हाथ दुःख और पीड़ा के सिवाय कुछ न लग सका।

धर्म चिन्तन में मूलतः दो विभाग है, एक वह जो प्रत्येक जीव को स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं और उसकी पूर्णता स्वीकार करते है, दूसरे वे हैं जो जीवन को

परतन्त्र व परिछिन्न मानते हैं। अब तक के उपलब्ध धर्म साहित्यों में इन दोनों के साध्य साधन के लिये अनेक दर्शनों का निर्माण हुआ।

धर्म चिन्तन में प्रकृति, पुरुष तथा जीव ये तीन ही मुख्य चर्चा के विषय रहे हैं। माया और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा ही धर्म के मूल स्त्रोत हैं। किसी सर्वोच्च सत्ता को जिसे लोग ईश्वर, गॉड, अल्लाह आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं, उसको अपना लक्ष्य मानकर शुभ की ओर चलना ही धर्म है, ऐसी लोगों की मान्यताएं हैं। वस्तुतः धर्म पर विचार करने से पहले धर्म पथ पर विचार करना ही ज्यादा अनुकूल होगा। जिसको हम सामान्य भाषा में आचरण व व्यवहार भी कहते है। इनमें मुख्यतः अहिंसा, प्रेम, सत्य ज्ञान तथा सेवा को आज हम संसार में प्रतिष्ठित देखते हैं। संसार भर के सभी धर्म, इनमें से किसी एक का ही अवलम्बन लेकर चल रहे है। सिद्धांत व विचार एक से एक बढ़कर हैं, फिर भी हम देखते है, मौका पड़ने पर ये सब राग द्वेष को परस्पर के दावों में पड़कर धर्म भी एक व्यापारिक विज्ञापन सिद्ध हो रहा है। इसका मूल कारण है धर्म को मानने वालों का अपने सिद्धांत से विपरीत कर्म करना।

सभी धर्म परस्पर प्रेम, मानवता, विश्व बन्धुत्व तथा सहएकता पर विश्वास करते हैं और सबकी आकांक्षा यही रहती है कि परमात्मा की सृष्टि में कोई दुःखी न हो, अशांत न हो, कहीं अन्याय न न हो, कोई किसी का शोषण न करे सब एक दूसरे को हृदय से चाहे और आनन्द से लोक परलोक को सफल बनायें।

उपर्युक्त धर्म के सार्वभौमिक पांच सिद्धांतों का आज संसार में प्रचलित सभी धर्मों में दो, या दो से अधिक अथवा एक का समावेश है। सत्य, ज्ञान, सेवा, प्रेम तथा अहिंसा से पांच धर्म के महा विस्तार है। इनमें से किसी एक का दृढ़ता से पालन, आचार तथा उस पर चिन्तन एवं विचार को ही दर्शन कहा जाता है। हम देखते हैं आज संसार में जितने भी धर्म है, वे सब इनकी दुहाई देते हैं।

क्रमशः

नेह

जैसे प्यासी भूमि पर,
खूब बरसे मेह !
एक मुट्ठी मेह !
बादलों के बीच, बिजली-सा चमकता
क्लान्त अंखियों से टूट मोती-
सा बिखरता
आंचलों के बीच, लरजता –
एक मुट्ठी नेह !
तोड़ देता, वासना के पंख
मोड़ देता, बेरुखी का रुख
सर उठाता जिन्दगी का ध्येय
एक मुठ्ठी नेह !

—सुनील गुप्त

" गीत "

—शास्त्री बलदेव राज 'शान्त'—

बादल के छा जाने पर, मैं क्यों आंसू के छन्द बनाता हूँ।
प्राणों से हारा पूछ पूछ, यह बात स्वयं मुझको भी मालूम नहीं।।

मैंने शूलों से कर्ज लिये,
सिर पर पर्वत के भार धरे।
आयु का रथ धीरे से दूर गया,
सपने अपने रह गये धरे।

पग पग पर ठोकर खाकर भी, क्यों मैंने प्यार नहीं छोड़ा?
मन यूं ही चिन्ता में डूब गया, यह बात स्वयं मुझको भी मालूम नहीं,

मैं चाहों का राज कुंअर था,
अब आहों का सौदागर हूँ!
मैं सागर था सबका प्यार भरा।
छलना से छलकी गागर हूं!

कंचनमृग छल कर दूर गया, मैं फिर भी क्यों दौड़ रहा?
है पर्ण कुटी की शपथ मुझे, यह बात स्वयं मुझको भी मालूम नहीं।।

मैं आंधी में जलता दीपक हूं।
गायक हूं मरघट की दूर खामोशी का!

खण्डहर की सूनी राहों में—
पेशा है गीत—फ़रोशी का।

मैं पतझड़ का मर्मर सुनकर भी क्यों निर्झर-सा बहता रहता हूं ?
गमगीन-कथा से भरी हुई, यह बात स्वयं मुझको भी मालूम नहीं ॥

मैं खुलकर खेला खूब यहां,
सागर की भीषण धारा में।
सिर्फ जिन्दगी कटी यहाँ पर,
भावुकता की कारा में।

मैंने प्रत्येक सृजन के पीछे, क्यों निज जीवन का संहार किया ?
खारे दृगजल से धुली हुई, यह बात स्वयं मुझको भी मालूम नहीं ॥

क्यों गीतों के स्वर का वर मांग लिया,
मैंने इन चान्द सितारों से !
क्यों मेरा घर भर दिया अरे ?
जग ने आंसू के उपहारों से ?

तन-मन के दोष हटाने पर भी क्यों मुझको सन्तोष नहीं मिलता ?
मैं किससे पूछूं बार-बार, यह बात स्वयं मुझको भी मालूम नहीं ॥

कुछ वैज्ञानिक तथ्य

मंत्र और मूर्तियां

—जितेन ठाकुर—

भारतीय संस्कृति का आधुनिक रूप वास्तव में पंडितों और पंडो द्वारा निर्मित कल्पनातीत तथ्यों पर आधारित है। प्राचीन संस्कृति का यह विकृत रूप है, जो अस्पष्टत: हमारी परम्पराओं के प्रत्येक पक्ष को परोक्ष रूप से दयनीय उद्घोषित करता है। विज्ञान के बढ़ते हुए चरणों के समक्ष इस युग में यह सब बहुत ही अटपटा सा लगता है। इसे सहजता से गले से नीचे नहीं उतारा जा सकता। परन्तु हमारी संस्कृति इतनी तथ्य विहीन नहीं जितना कि उसको स्वार्थवश कुछ व्यक्ति-विशेष बनाये बैठे हैं।

भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम स्वरूप उन शताब्दियों में सर्वाधिक विकसित विज्ञान का पर्याय ही था। परन्तु आज हम अपनी संस्कृति के वैज्ञानिक मूल से दूर हटते-हटते मात्र उसकी छीलन भर ग्रहण कर, कहीं भी किसी भी समय इसकी आलोचना करने से नहीं कतराते। इस सब के लिये दूषित समाज का वह एक विशेष समूह है, जो हमारी प्राचीनतम संस्कृति को आडम्बरों के झीने आवरण में ढकते-ढकते इतना नग्न कर चुका है, कि सहसा ही कोई भी उसके आधारभूत तथ्यों पर विश्वास सहेज ही नहीं पाता। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, नई पीढ़ी की, संस्कृति के प्रति, नास्तिकता एवं अविश्वास के रूप में।

हम एक ही समाज में संस्कृति के प्रत्येक पहलू पर बहस करने की सोच लें, तो यह कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव सा प्रतीत होता है। हमारी संस्कृति स्वयं में एक सागर है, और हम अभी इतने समर्थ नहीं, कि इस सागर को अंजुरी में भर अगस्त्य की भांति गटक सकें।

शब्द और मन्त्र :

हमारी संस्कृति में मन्त्रोच्चारण का प्राचीनकाल से एक विशेष महत्व रहा है। **किसी भी उत्सव का मन्त्रों के उच्चारित हुए बिना पूर्ण होने की कल्पना भी करना मूर्खता से अधिक कुछ न था।** मन्त्रों के पीछे निहित था शब्दों का प्रभाव। वास्तव में शब्दों के प्रभाव को देख-परख कर ही हमारे पूर्वजों द्वारा मन्त्रों का निर्माण किया गया था।

शब्दों की शक्ति को रूसी वैज्ञानिक पॉवलाव ने भी स्वीकारा है। शब्दों के उच्चारण के बाद उनके प्रभाव को परखने के लिये डाक्टर नोएड ने एक ऐसा यन्त्र बनाया था जिसके मुंह खोलने मात्र से कम्पन स्पष्ट हो जाता था और जोर जोर से बोलने पर कांच का सामान टूट जाता था। ईसाईधर्म शब्द से ही समस्त विश्व, ब्रह्माण्ड की रचना मानता है। भारत में भी वैयाकरणों का स्फोट-वाद इसी शब्द की, स्फोट की व्याख्या करता है। उपनिषद्

साहित्य में भी "ॐ" को ही ब्रह्म माना गया है । और इन्ही वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है शब्दों का चयन कर मन्त्रों का निर्माण ।

एक विश्लेषण के अनुसार यदि डेढ़ अरब लोग कुल तीन घन्टे परस्पर बातें करें तो कम से कम ६ हजार खरब वाट विद्युतशक्ति उत्पन्न होती है । यह भारत में उत्पन्न होने वाली बिजली से कई गुना अधिक है और इस ऊर्जा से सम्पूर्ण विश्व में कई घण्टे प्रकाश किया जा सकता है । यह विश्लेषण शब्दों के प्रभाव को स्पष्टतः इंगित करता है । मनुष्यों की बोल-चाल में प्रयोग होने वाले शब्द ही उत्पन्न ऊर्जा के उद्गम स्रोत होते हैं ।

मन्त्रों का निर्माण जिस शताब्दी में भी किया गया स्पष्टतः उस समय शब्दों के महत्व और प्रभाव को परखा जा चुका था । उस समय के विद्वानों द्वारा शब्दों को वर्गीकृत कर उन्हें मन्त्रों के लिए चयन किया गया, और फिर उन्हें नियन्त्रित कर इस प्रकार श्रृंखलाबद्ध किया कि उनसे अधिकाधिक प्रभावोत्पादक विद्युत तरंगों की उत्पत्ति हो सके । मन्त्रोच्चारण के समय सर्वाधिक प्रभाव हमारे कानों पर ही पड़ता है और हमारे कान सूक्ष्म विद्युत घर का काम करते हैं । कान में शब्दों के पड़ते ही विद्युत-धारा प्रवाहित होती हैं जो सीधे मस्तिष्क तक पहुंचती है । शब्दोच्चारण से शब्दों में निहित विद्युत को चुम्बकीय तंरगे श्रोता के मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं इससे स्नायु मण्डल पर भी प्रभाव पड़ता हैं ।

शब्दों के प्रभाव से काम, क्रोध, भय, उद्वग्निता, शरीर, कम्प आदि भी उत्पन्न होते हैं । शब्दों से ही हृदय की धड़कन बढ़ती है तथा रक्त का दबाव भी बढ़ जाता है इसी आधार पर "लाई-डिक्टेटर" का निर्माण हुआ जो रहस्यपूर्ण रूप से प्रत्येक स्थिति का अवलोकन केवल धड़कन के घटने-बढ़ने से ही प्राप्त कर लेता है । क्रोध, भय अथवा घृणा के शब्दों को सुनने से मनुष्य के शरीर में 'एड्रोलिन' नामक स्राव बड़े वेग से निकल कर रक्त में मिलने लगता है और वह मस्तिष्क तथा अन्य भागों को जागरूक बनाता है तथा शक्ति प्रदान करता है ।

इससे सिद्ध होता है कि मन्त्रों में निश्चित शक्ति होती है । कल्याण, मनोकामनासिद्धि, शत्रुनाश आदि के लिये विविध शब्द प्रक्रियाओं को विविध प्रकार से विधानित किया गया था । इन्हीं को सम्मोहन और आत्म परामर्श कहा जाता है। मन्त्रों का ठीक से अर्थ समझ कर ठीक-ठीक उच्चारण करने से अनुकूल परिस्थितियों में सफलता मिलती है । तथा विपरीत परिस्थितियों में आत्मबल और शंकाओं का समाधाम भी होता है। इसलिये महान ऋषियों को ही मन्त्र द्दष्टा कहा जाता है । अन्य बातों के समावेश के कारण सफलता या सिद्धि की मात्रा में अन्तर अवश्य पड़ता है परन्तु यह अन्तर मन्त्रों के प्रभाव को नगण्य नहीं करता ।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों में अनुपम शक्ति विद्यमान होती है और मन्त्रों में यह शक्ति शब्दों को नियन्त्रित कर श्रृंखलाबद्ध करने से उत्पन्न होती है। इसीलिये हमारी संस्कृति में शब्दों को दूषित करना वर्जित

(शेष पृष्ठ १९ पर)

"भगवान् शंकर"

चित्र-विचित्र-विग्रह-वर्णन

—स्वामी तीर्थानन्द—

१–समस्त विद्याओं के अधिष्ठाता ज्ञानस्वरूप भगवान् का स्वाभाविक वर्ण गौर-सफेद है। ज्ञान का रूप–रंग सफेद माना गया है। अन्य सब रंग एक सफेद रंग से प्रकट होकर फिर उसी में लीन हो जाते हैं।

२–भगवान् के पांच मुख पांच महाभूतों के एवं दस हाथ दस दिशाओं के सूचक हैं।

३–भगवान् शंकर दिगम्बर रहते हैं। क्योंकि देश, काल, गुण, क्रिया आदि पदार्थ प्राणियों में हमेशा ढके तथा सीमित रहते हैं। लेकिन भगवान् इन सब दुर्गुणों से रहित हैं।

४–भस्म-लेपन :—भिन्न-भिन्न वस्तुएं भस्मीभूत हो जाने पर एकरूप ही भासती हैं। दूसरी दृष्टि से सब कर्म-बन्धन के कारण हैं। पर महादेव जी के सामने आते ही भस्मीभूत हो जाते हैं। भस्म ज्योति, वीर्य तथा प्रकृति का परिचायक है; और लक्षित करता है कि, भगवान् सब दुर्गुणों से रहित हैं। भूत-प्रेत, पिशाच तथा अत्यन्त दुःसह रोग भस्म रमाए व्यक्ति के पास आने से दूर भाग जाते हैं।

५–जटाएँ —भगवान् शिव भक्तों के विराम-स्थान वट वृक्ष (विश्वास रूप) है। वेदान्त और योग उस वट वृक्ष स्वरूप भगवान् की जटाएं हैं। व्यावहारिक रूप से यह यह जटाएं सात रंगों की प्रतिपादक और जगत् जीवन की आधार-औषधी मानी गई हैं।

६–भगवान् के सिर पर शीतलता जीवों को भक्ति, मुक्ति प्रदान करने वाली है। भगवान् के माथे पर ऐश्वर्य का परिचायक चन्द्रमा प्राणियों के सन्ताप को हरण करने वाला हैं। नया सौन्दर्य का खजाना हैं। ललाट पर धारण करने से ये लक्षित होते है कि भगवान् शंकर जगत् के त्रिविध (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) ताप के निवारक है तथा सौन्दर्यकोश हैं।

❁ धर्म और विज्ञान ❁

देवन्द्र कुमार
बी० ए०, बी० एड्०, शिक्षक—हिन्दी

वर्तमान युग विज्ञान के व्यापक प्रभाव से परिपूर्ण है। जीवन के सभी पक्षों को इसने आप्लावित किया है। प्रकृति पर भी विजय प्राप्त कर विज्ञान ने मानव-जीवन को सरलतर एवं सुगमतर बना दिया है। परन्तु एकमात्र भौतिक जीबन से सम्बन्धित होने के कारण यह मनुष्य का स्वामी बन बैठा है और भंयकर शस्त्रास्त्रों के रूप में अभिशाप बनकर आया है। यदि वह मनुष्य के आन्तरिक जीवन से एकात्मकता स्थापित कर लें, तो मनुष्य को जीवन की सही प्रणाली को बोध हो जाय। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि यदि धर्म आमुष्मिक पक्ष के अतिरिक्त मानव के बाह्य पक्ष से आत्मीयता स्थापित कर लें, तो ईश्वर की उपलब्धि का वास्तविक मार्ग मनुष्य को मिल सकता है। धर्म की दौड़ केवल आन्तरिक पक्ष पर है, तो विज्ञान की दौड़ मानव को काँच के टुकड़े बटोरने की शक्ति प्रदान करने तक है। धर्म के बिना विज्ञान अन्धा है तथा विज्ञान के बिना धर्म लंगड़ा है। दोनों के समन्वय से मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव है ?

धर्म क्या है ?—सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा निरपेक्ष तथ्यों की संज्ञा ही धर्म है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। मनुस्मृतिः ।।

मनु का दशलक्षणयुक्त यह धर्म देश काल और परिस्थितिओं की सीमा में नहीं बंधता। जिस प्रकार अग्नि का धर्म उष्मा है, उसी प्रकार दया, प्रेम सहानुभूति, क्षमा, सत्याचरण और पवित्रता मौलिक गुण है, जिनको मानव से पृथक् नहीं किया जा सकता। ये गुण ही वास्तव में धर्म के अंग है, जिन्हें समस्त संसार एकमत होकर स्वीकार करता है। इस प्रकार धर्म और मानवधर्म पर्याय हैं। यही मानवधर्म वैदिक धर्म भी है, क्योंकि वेदादिग्रन्थों की शिक्षायें सम्पूर्ण मानव—जाति के लिए हैं।

सत्य दो प्रकार का होता है-(१) स्वतन्त्र सत्य (२) परतन्त्र सत्य। स्वतन्त्र सत्य शाश्वत सिद्धान्त है, वह स्वयसिद्ध है। परतन्त्र सत्य विवादस्पद होता है। इसकी सिद्धि हेतु प्रमाण एवं तर्क की आवश्यकता होती है। विज्ञान एवं धर्म के मापदण्ड भी प्रायः सामान्य धर्म के अमूर्त होने के कारण इसका परीक्षण प्रयोगशाला में सम्भव नहीं है, अतः इसका बाह्य परीक्षण न होकर

अतःपरीक्षण या अन्तर्दर्शन ही किया जाता है। विज्ञान में यही प्रक्रिया उनके प्रायोगिक परीक्षण में अपनाई जाती है। तर्क और प्रमाणीकरण दोनों के मापदण्ड है। निम्न वाक्यों से धर्म का तर्कानुकूल होना सिद्ध है—

यस्तर्केणानुसन्धत्ते ॥ मनुस्मृतिः॥
तर्कमेव ऋषि"
"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे"

विज्ञान क्या है ?—"Science is a systematized knowledge "क्रमबद्ध और सुसंगठित ज्ञान ही विज्ञान है" सुसंगठित ज्ञान वही होगा, जिसमें तर्क, बुद्धि एव प्रमाणों का योग रहा हो। विज्ञान के मापदण्ड है-निरीक्षण (Observation) वर्गीकरण (Classifications) प्रमाणीकरण (Veaification) विवेचना (Interpretaiion) एवं तर्क (Reasoning)

विज्ञान और धर्म के मापदण्डों के आधार हम देखते है कि लगभग दोनों की कसौटी समान है, तो दोनो में विरोध क्यों है? वैज्ञानिक जगत धर्म को पाखण्ड बता रहा है तथा धर्म के ठेकेदार वैज्ञानिकों को गालियां बक रहे हैं। यह सब क्यों ? विचारशीलता का अभाव तथा पक्षपात दृष्टि एवं स्वार्थ पूर्ति की लिप्सा।

विज्ञान का धर्म के प्रति विरोध क्यों ?— विज्ञान के उद्भव के साथ वैज्ञानिक जगत् ने सृष्टि की व्याख्या के लिए ईश्वर के अस्तित्व को को नकार दिया। जर्मन विद्वान निट्शे ने कहा— "There exists no God in the world and if there be any, we must abolish Him together"। सन् १९०० में प्रो० लेकल ने "Riddle of univrese लिखकर ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकृत कर दिया। १९०१ में प्रसिद्ध विद्वान् बारथेलोट ने व्याख्यान में कहा था-"The day of Religion has passed away, it must now be replaced byscience"। इस प्रकार फैले हुए नास्तिकवाद को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो गया और आस्तिकता का खुलकर विरोध हुआ। इसका मूल कारण धर्म के ठेकेदारों द्वारा जनता पर किये गये अत्याचार थे, जिनकी वैज्ञानिक जगत् पर प्रतिक्रिया हुई। १९ फरवरी १६०० में प्रसिद्ध सत्यान्वेषक ब्रूनो को जीवित चिता में जलाया गया, क्योंकि उसने यह चेष्टा की थी कि सम्पूर्ण विश्व का केन्द्र पृथ्वी नहीं है और सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमता। उसने मरते समय कहा था 'Yon can burn me this day, but the day will come when not only you but your descendants also will accept what I say today'! पेडवा यूनर्विसिटी के प्रोफेसर गैलैलियो महोदय को बाइबिल के अनुसार पृथ्वी को चपटी न मानकर गोल और घूमती हुई मानने के अपराध में कारागार का दण्ड मिला था। पेशिया को इसी सम्बन्ध में भाषण

देते हुए प्लेटफार्म से गिरा दिया गया था। इन परिणामों के कारण वैज्ञानिक जगत् ने रोष में आकर धर्म का बहिष्कार करना प्रारम्भ किया और लाप्लास महोदय, ने, जिन्होंने Nabular theory निकाली, सृष्टि की उत्पत्ति के लिए ईश्वर की कोई आवश्यकता न समझी। नास्तिकों के राजा मि० गोर्की के सभापतित्व में मास्को में ७०० प्रतिनिधियों की एक सभा ने बाइबिल के विरुद्ध जेहाद किया, क्योंकि बाइबिल की बातें विज्ञान विरुद्ध उतरती हैं। इन सबको लेकर वैज्ञानिक जगत् के अन्दर वहीं रोष अपने अचेतन रूप में कार्यान्वित है। वैज्ञानिक निरन्तर धर्म का बहिष्कार कर रहा है, क्योंकि धर्म घिनौने रूप में उनके समक्ष आया था।

धर्म और विज्ञान पूरक हैं:— सन् १८६३ ई० में शिकागो धर्म परिषद् ने सार्वभौम धर्म के बारे में निम्न निर्णय लिया कि (1) Equality (2) Universal brotherhood (3) Harmonious devolepment (4) Scientific basis से युक्त धर्म ही मानव धर्म होगा। अतः आवश्यकता है, धर्म और विज्ञान के समन्वय की। अगस्त १९१४ में इंग्लैण्ड में एक विज्ञान सप्ताह मनाया गया, जिसमें ७ बड़े वैज्ञानिकों ने भाग लिया। इनमें Sir olivers, Lodge, Dr. Fleeming, Prof. Hull और Porf Thomsan ने विज्ञान की उद्देश्य - पूर्ति के हेतु ईश्वर की सत्ता को माना। सर आलिवर लॉज ने कहा था–"The neglevce of the religion of complete science is but one"। तथा हक्सले ने कहा था-

"The true science and true religion are twin-sistsrs and their separation is sure to prove the death of either"। ६५ वर्ष के अत्यन्त अनुभव के बाद फ्रॉस्ट महोदय ने यही परिमाण निकाला कि सृष्टि के कार्य में भी एक प्रयोजनात्मक सत्ता विद्यमान है। उन्होंने कहा था -"There is a purposeful operation of nature when you accept this, if seems to inconsistent with physical science not belive to in a mind", यूरोपीय विद्वानों के ये प्रमाण सत्यभूत आधारों पर टिके हैं। उन्होंने वास्तविक तथ्यों को उभारा है। डा० फ्लेमिंग महोदय भी विज्ञान और धर्म के परस्पर सहायक होने की बात करते हैं-"The are not oppposed but are allied" प्रसिद्ध विद्वान् Strang महोदय ने यहाँ तक लिख डाला कि हिन्दुओं के सृष्टि-उत्पत्तिविषयक सिद्धान्त आज के प्राकृतिक विज्ञान के अनुकूल है-"The Hindu doctrine of the recurreut dissolution and creation of earth which we are rccustomed to attribute to more fancy may prove to be based upon solid foundations". इस प्रकार आज पाश्चात्य जगत् के विद्वान् भी धर्म की तह में छिपे वैज्ञानिक तथ्यों की परख कर रहे हैं तथा उनको

उभार कर धर्म को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर रहे हैं।

अतः सारे संसार के लिए श्रेयस्कर है कि वह धर्म को विज्ञान के साथ मिलाकर उसका उपयोग करे, अन्यथा कुछ हाथ न लगेगा। सत्य का अन्वेषण मानव-जीवन का लक्ष्य है, जिसे पाने के लिए हमें समन्वय-पद्धति का अनुकरण करना होगा। पक्षपात करना सत्यान्वेषण में व्यवधान है, अतः आवश्यक है कि दुराग्रह को छोड़ हम सत्य का अवलम्बन करें और विज्ञान-सम्मत धर्म को लेकर संसार को स्वर्ग बना दें, जैसा कि प्रसिद्ध विचारक थोरियों का कथन है:—On the Vedic ideal alone, it is possible to near a new earth in the image and likeness of the eternal heavens" यह विज्ञान - समस्त वैदिक धर्म द्वारा ही सम्भव है।

तर्कयुक्त विज्ञान-सिद्ध वर वैदिक धर्म हमारा है।
है सबसे प्राचीन विश्व का पावन परम सहारा है॥

✿

वर्तमान चुनाव व व्यावहारिक वेदान्त

—श्याम लाल कश्यप एडवोकेट,—
उपाध्यक्ष-स्वामीराम तीर्थ मिशन, अलीगढ़।

स्वामी राम ने कई स्थानों पर कहा है कि 'राम आध्यात्मिक नियमों से पूरे विश्व इतिहास की घटनाओं की व्याख्या कर सकते हैं। उनके द्वारा आविष्कृत **त्रिशूल का नियम** सुस्पष्ट घोषणा करता है कि प्रकृति का पूरा जोर द्वैत के विरुद्ध है।

जब कोई व्यक्ति, समुदाय अथवा समाज आन्तरिक स्थिरता से हटता है उसका विरोध प्रकृति शक्तियों द्वारा आरम्भ हो जाता है।

इस संदर्भ में उन दो व्यक्तियों के सम्बन्ध में आप स्वामी राम के विचार पढ़ चुके होंगे जो एक वेगवती नदी में बहे जा रहे थे, उसमें से एक ने लकड़ी का बड़ा लट्ठा पकड़ा और वह उसके सहारे कुछ दूर बह कर पानी की एक खाई में गिर कर नष्ट हो गया तथा दूसरा जिसने किनारे पर खड़े व्यक्तियों द्वारा फेंका गया रेशम का महीन धागा पकड़ा था, नदी पार हुआ और जीवन प्राप्त कर सका।

ठीक इसी प्रकार जब हम बाहरी आडम्बरों पर

बर्ताबों, सगठनों, तथा कथित प्रोग्रामों, शक्ति, फौज, पुलिस अथवा इसी प्रकार के शक्तिशाली डालर, पैसा, जन शक्ति, पर आकर टिकते हैं, उसी क्षण प्रकृति हमारे विरुद्ध होती है, क्योंकि, आन्तरिक स्थिरता के बिना कोई भी मंजिल भटकाव में ही समाप्त होती है। रावण, दुर्योधन, नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनि, आदि का पतन इसी कारण हुआ।

किन्तु जब हम सत्य पर अड़े रहने का आग्रह करते है, उसी क्षण सफलता हमारे हाथ लगती है।

राम से लेकर दयानन्द पर्यन्त सभी सफल चरित्रों की सफलता का एक मात्र यही कारण है। मार्क्स, न्यूटन, डार्विन आदि महापुरुष सत्य से छुये गये इसी कारण वे संसार की महती सेवा कर सके।

दूसरे ही क्षण, जब हम इस प्रकार सत्य पर डटने के कारण सफलता प्राप्त करते हैं और दर्प में भर जाते हैं उसी क्षण फिर त्रिशूल का पहिया सत्य का नियम, प्रकृति का नियम उल्टा घूमने लगता है, और हम कहीं के नहीं रहते हैं।

इस प्रकार स्वामी राम का यह खुला रहस्य है, हर कोई आजमा सकता है, राम ने व ही कहा है जिसे अनुभव करके देखा। इस कारण जहां उनके सिद्धान्त अनुभवों में उतरने के कारण पूर्णतः सत्य है वहां उनका उन सिद्धान्तों के प्रति दृष्टि कोण पूर्णतः वैज्ञानिक समय पर, व्यवहार पर आधारित है। इस प्रकार स्वामी राम के **'व्यावहारिक—वेदान्त'** का सिद्धान्त सार्वभौतिक व अनुभूत सत्य है। विश्व की प्रत्येक घटना की व्याख्या इस के प्रकाश में कर सकते है। चाहे व घटना आर्थिक, राजनैतिक, आर्थिक अथवा और किसी प्रकार की रही हो। यदि आप नाम से चिढ़ते हैं तब इसका नाम व्यावहारिक-सत्य कह सकते है। चाहे आज विश्व राम के सिद्धान्तों का मूल्यांकन न करे किन्तु एक नव निर्माण के बाद राम के प्रत्येक सिद्धान्त को उसका उचित स्थान प्राप्त होगा क्योंकि प्रकृति का चुनाव उनके पक्ष में है।

* उपदेश *

मेरी आशा, विश्वास तुम्हीं लोग हो। मेरी बातों को ठीक-ठीक समझकर उसी के अनुसार काम में लग जाना।......उपदेश तो तुझे अनेक दिये ; कम से कम एक उपदेश को भी तो काम में परिणत कर ले। बड़ा कल्याण हो जायगा। दुनिया भी देखे कि तेरा शास्त्र पढ़ना तथा मेरी बातें सुनना सार्थक हुआ है।

—स्वामी विवेकानन्द

(पृष्ट १२ का शेष)

है और इसे पाप की संज्ञा दी गई है।

पत्थर तथा धातुएं

शब्दों की भांति धातुओं में भी कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। मन्त्र जाप करने से जिस प्रकार विद्युत की चुम्बकीय तंरगे मस्तिष्क को प्रभावित करती है उसी प्रकार धातुओं के समक्ष ध्वनि उत्पन्न करने से उसकी प्रति-ध्वनि मस्तिष्क में विद्युत प्रवाह पैदा करती है।

बिल्लोर इसी प्रकार की एक विशिष्ट धातु है जिससे अधिकाधिक मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। बिल्लोर के समक्ष प्रार्थना करने पर इतनी ध्वनि उत्पन्न होती है कि उससे रेडियो का संवाद सुना जा सकता है। चन्दन तथा अन्य गन्ध वाली लकड़ियों में भी विद्युत उत्पन्न होती है।

जब कोई भी व्यक्ति किसी मूर्ति के समक्ष भक्ति-भाव से ध्वनि उत्पन्न करता है, तो प्रति ध्वनि के रुप में विद्युत चुम्बकीय तरंगे उसके मस्तिष्क से टकराकर अच्छा प्रभाव डालती हैं। यही क्रिया मनौती मानने पर भी होती है, जिसमें प्रतिमा से परिवर्तित होकर चुम्बकीय तरंगे मनौती मानने वाले की संकल्प शक्ति को सुदृढ़ बनाती है।

मूर्ति पवित्रता और आदर्शों के साकार रुप में भी कार्य करती है। मूर्ति की कलात्मकता का भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। मूर्तियां आत्म-परामर्श का सर्वोत्तम साधन है, इनके द्वारा स्नायविक तथा मानसिक विकारों की चिकित्सा भी की जा सकती है।

उपरोक्त कथन से मूर्ति पूजा तथा मन्त्रोच्चारण का महत्व स्पष्ट होता है। परन्तु इनको एक वैज्ञानिक तथ्य ही मान कर हमें इनके प्रति आस्था रखनी चाहिये। अपने आदर्शों को भूल कर इन्हीं में तल्लीन रहना तथा वैज्ञानिक तथ्यों की उपेक्षा का इन्हें अन्ध विश्वास के सांचे में ढालना, केवल आडम्बर मात्र होता है। विज्ञान को व्यवसाय बनाने पर उसके मूल गुणों का सदैव ही हनन हो जाता है।

धर्म और नीति

एक शब्द में वेदान्त का आदर्श है—मनुष्य के सच्चे स्वरूप को जानना। और वेदान्त का यही सन्देश है कि यदि तुम व्यक्त ईश्वररूप अपने भाई की उपासना नही कर सकते, तो तुम उस ईश्वर की कैसे उपासना करोगे जो अव्यक्त है ?

—स्वामी विवेकानन्द

Life And Teaching Of SWAMI RAMA TIRTHA

—Dr. M.S. RANDHAWA—
Vice-Chancellor,
Pb. Agricultural University Ludhiana

Punjab has been a land of seers, sages, and martyrs who made a rich contribution to the cultural heritage of India as well as its occasional revival and re-evaluation through their precepts and practices. The latest among the galaxy of these spiritualists was Gosain Tirth Ram* (1873-1906), later out of reverence addressed as Swami Rama Tirtha. Faced with almost all the disadvantages which the life can offer viz los of mother in his infancy, constant indifferent health, early marriage, and economic hardship, he attained academic distinctions, in his own words through 'solitude fruitful use of time, and will to work'.

In his B.A. examination [1892] he topped the Punjab University, Lahore in the aggeregate marks' but failed in English by a few marks and thus got deprived of both the success and the financial aid thourgh various scholarsships. This episode puts us to serious thinking. Tirtha Rama was not weak in languages. He was well-versed both in Urdu and Persian. Later he developed proficiency in Sanskrit as well. To evaluate the academic progress of the Indian students through their knowledge of Engliah alone had been academically unsound as it led to a huge wastage of the youth in the higher educational institutions. It also hindered the emotional integration between the educated few and the illiterate many.

This failure of Tirtha Rama too deep for tears, did not leave him dejected. Taking it in the spirit, that God willed so he availed himself of the subsequent chance and topped the successful candidates. In 1895 he repeated his performance in his M.A. [Mathematics] examination through a first class first. His Principal, Mr. Bell of the Government College, Lahore. offered to have Tirtha Rama nominated as a member of the Provincial Civil Service, than a very coveteous aehievement, but he declined gratefully on the plea that he got education to share it and not to make

*Born in the village Muraliwala, district Gujranwala [now in Pakistan] on October 22, 1873. At the time of renunciation he reversed his name from Tirth Rama to Rama Tirath.

personal use of it. His preference was to become either a teacher or a preacher. He would say, "Good company, books and prayer make one the king of the three words."

He taught for some time in the Mission High School, Sialkot' and later in Forman Christian College, Lahore, his alma mater to undergraduate classes. Mathematiss is an abstract and for many an uninteresting subject. But he made his teaching fascinating by quoting suitably from Punjabi poets like Bulleh Shah and Indian, as well as, Greek mythology. He quoted the principles of Mathematics even to prench his popular spritual observation, "Renounce Maya and the World to attain bliss." He would define happiness i.e. bliss as a quotient of necessities of life as numerator and desires as denominator. If the desire aiming at the comfort of body continue to outnumber the bare necessities of life happiness decreases proportionately. If the desires could be reduced to the minimum the bliss would mount, because anything divided by zero leads to infinity.

Gradually he realised that his employment did not leave him with sufficient time for spiritual growth and consequent emancipation. He accepted a part-time assignment in the Oriental College after giving up his job in the F.C. College. By the end of 1899 he resolved to renunce the world and retired to the hills to the north of Haridwar.

According to him there are three ways to be one with God : Karma Yoga, the path of righteous and fearless action, Bhakti Yoga, the path of universal love, and Jnan Yoga, the path of wisdom through contemplation. He chose the path of love for him and to preach his message he toured both the East and the West. A few of his sayings are stated below to illustrate his philosophy emanating love, understanding, righteousness and wisdom :

(i) A helping hand is better than praying lips.

(ii) A community progresses not under great men stuffed with small views, but when it is led by modest people inspired by lofty aims.

(iii) Sins themselves are a punishment and not a cause for punishment.

(iv) Selfishness is the root cause of all fear.

(v) Learning enables us to peep into the past, but wisdom reflects the future.

(vi) No tonic is as efficacious as happiness.

(vii) Understading of others comes only through loving them.

(viii) A mother's life is a prayer in itself. Her body is a temple of the Supreme

Some of his observations on national reconstruction still serve as beacon-light for us :

(i) The most fruitful gift which can be given to a human being is to impart him knowledge. Charity removes his hunger for a day only, but knowledge enables him to earn his living all his life.

(ii) Pariotism does not mean to keep boasting of the glories of the past.

(iii) Dharma enjoins us to subordinate the caste distinctions to national fellow feeling.

(iv) Our people need more a spirit of appreciation than the capacity of criticism. They should deveiop the sentiment of traternity and the love for honest toil.

(v) Independent thinking should not continue to be looked upon in India as a heresy. Blind faith in a dead language is an act of sacrilege.

These speak amply of the relevance of the teaching of Swami Rama Tirth to solve with courage and hope the problems that face us today.

— —

PUZZLE

By **G.P. Mohanty**

Oh ! Lord !
If you are the creator of this world
How have they crowned you with
The glorious name of the great unattached......... (1)

Every one offers
Love affection and devotion
Some whatever they possess
Yet you are known to be above all desires......... (2)

You are above all human qualities
Love, emotion and sentiments,
Happiness, sorrow and wordly furmode
Still they pray, to please your Vanities .... (3)

It is all puzzle to me
Antagonism and Synnergism
only I understand without you
Nothing moves and you are the rular of mine......... (4)

★ आश्रम समाचार ★

स्वामी रामतीर्थ आश्रम, राजपुर, देहरादून में २ मई से ७ मई तक "श्री श्री माँ आनन्दमयी" का ८२ वाँ जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इसके लिए श्री श्री मां ३० अप्रैल को ही आश्रम में पधार चुकी थी, माता जी का परिकर वर्ग तथा सेवक वर्ग १ मई तक आश्रम में आ चुका था। यद्यपि ४ मई तक प्रकृति ने साथ नहीं दिया। आंधी, तूफान, ओला, वर्षा तीन दिन तक होता रहा, फिर भी जन्मोत्सव कार्यक्रम में कोई शिथिलता नहीं आई, प्रतिदिन प्रातःकाल ४ बजे से नामसंकीर्तन, गीता पाठ आदि प्रारम्भ हो जाता था। प्रातःकाल जलपान (८ से ९) के बाद वृन्दावन की सुप्रसिद्ध रास-मण्डली गोस्वामी हर गोविन्द जी के द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की रास लीला ९ से १२बजे तक दिखाई जाती थी। १२ से ३ तक भोजन एवं विश्राम के बाद महापुरुषों का प्रवचम प्रारम्भ होता था। जिनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित महापुरुषों ने भाग लिया। और श्री श्री मां की दीर्घायु के लिए शुभकामना प्रकट की। श्री स्वामी शान्तानन्द जी भगवद्धाम हरिद्वार, महामण्डलेश्वर स्वामी अमरमुनि जी महाराज दिल्ली, महामण्डलेश्वर स्वामी ब्रह्मानन्द जी संन्यास आश्रम बम्बई, म० मं० स्वामी प्रकाशानन्द जी जगद्गुरु आश्रम, कनखल, स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज, नरवर, जि० बुलन्दशहर, दिव्यजीवनसंघ ऋषिकेश के अध्यक्ष स्वामी चिदानन्द जी तथा स्वामी माधवानन्द जी महाराज, म०मं० स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानन्द जी महाराज भगवद्धाम हरिद्वार, म०म० स्वामी पूर्णानन्द जी कृष्ण निवासाश्रम कनखल (हरिद्वार) निर्वाणी अखाड़े के महन्त श्री गिरधर नारायणपुरी जी महाराज, वेदान्ताचार्य एम०ए०, स्वामी अभेदानन्द जी महाराज, अवधूत शिरोमणि श्री आनन्द स्वामी जी महाराज, कैलाश आश्रम ऋषिकेश के म०मं० स्वामी विद्यानन्द जी महाराज आदि।

इस शुभ अवसर पर श्री श्री माँ का शुभ आशीर्वाद ग्रहण करने वाले सेवकों में से विशिष्ट रूप से निम्नलिखित सेवक थे। उ०प्र० के राज्यपाल श्रीमान् एम० चेन्ना रेड्डी, भूत-पूर्व गृह मन्त्री तथा मानव धर्म मिशन के संस्थापक श्रीमान् गुलजारी लाल नन्दा, भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री श्रीमान् त्रिगुण सेन जी, भूतपूर्व रक्षा सचिव श्री गोविन्द सिंह जी गोंडल सौराष्ट्र के भूतपूर्व महाराजा आदि सेवक विशेष रूप से पधारे थे। इस जन्मोत्सव के उपलक्ष में रामतीर्थ आश्रम के ज्ञान मन्दिर में रामचरित मानस का अखण्ड पाठ सस्वर तथा मधुर स्वर से लखनऊ की

सुप्रसिद्ध मण्डली के द्वारा किया गया। इस शुभ अवसर पर ५ मई को १०८ कुमारिकाओं का पूजन, भोजन तथा दक्षिणा आदि के द्वारा स्वागत स्वयं श्री श्री मां ने किया। जन्मोत्सव भी एक प्रकार से लघु कुम्भ का रूप धारण कर लिया था। ६ ता० की रात को ३ बजे श्री श्री आनन्द-मयी माँ की प्राकट्य बेला थी इस अवसर पर विशेष आयोजन किया गया, विशिष्ट अर्चना पद्धति से दुर्गास्वरूपा वात्सल्यमयी श्री श्री मां का पूजन किया गया। आगत महामण्डलेश्वरों का सम्मान किया गया। प्रातःकाल ४ बजे से श्री श्री मां ने निर्विकल्प समाधि ग्रहण की, इस स्थिति से १० बजे श्री श्री माँ का व्यावहारिक जगत में पदार्पण हुआ। आगत भक्तों को प्रसाद वितरण के बाद यज्ञ का अवशिष्ट प्रसाद दिया गया। ७ ता० को सायंकाल ५ बजे श्री श्री मां ने रामतीर्थ आश्रम के समस्त कर्मचारियों को वस्त्रादि के रूप में शुभ आशीर्वाद देने के बाद किशनपुर देहरादून के अपने आश्रम में पर्दापण किया।

८ मई से हरिॐ सत्संग भवन ५६ राजपुर रोड़, देहरादून में लघु सम्मेलन प्रारम्भ हो गया। प्रतिदिन सायंकाल ६ बजे से ६ बजे तक महापुरुषों का प्रवचन होता था। भारत के सु-प्रसिद्ध बालसन्त महानयोगी युवातपस्वी भागवत के प्रकाण्ड पंडित श्री स्वामी सत्यदेव जी महाराज ने ८ मई से २० मई तक रामप्रेमियों को उपदेशामृत का पान कराया। इस अवसर पर सौम्यस्वभाव सरलहृदय स्वामी स्वभावानन्द जी महाराज ने ईशावास्योपनिषद् के मंत्रों की व्याख्या की। १५ मई तक इस प्रकार लघु सम्मेलन चलने के बाद १६ मई से २२ मई तक उस स्थान पर ४१वें स्वामी रामतीर्थ आध्यात्मिक विराट् सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित महापुरुषों ने शुभ आशीर्वाद प्रदान किया। वाराणसी से पधारे हुए बाबा विश्वनाथयति जी महाराज, पावनधाम हरिद्वार के संस्थापक स्वामी वेदांतानन्द जी महाराज, म० मं० स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानन्द जी महाराज, म०म० स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज, प्रीतम मुनि जी महाराज, म०मं० स्वामी रघुवरदयाल जी महाराज, म०म० स्वामी सर्वेश्वर मुनि जी महाराज, म०मं० स्वामी गुरुमुखानन्द जी महाराज, म०मं० स्वामी ब्रह्महरि जी महाराज, रामरायदरबार देहरादून के गद्दी नशीन महन्त इन्द्रेशचरण दास जी महाराज

स्वामी स्वतंत्र मुनि जी महाराज, स्वामी श्री प्रकाश जी, स्वामी सूर्य प्रकाश जी, स्वामी देव स्वरूप जी महाराज, स्वामी परमात्मानन्द जी महाराज, स्वामी अमर मुनि जी महाराज, स्वामी केशवदास जी शास्त्री दादूबाग, कनखल, बाल–सरस्वती कुमारी उमा भारती, स्वामी शाश्वतानन्द जी तीर्थ, स्वामी विवेकानन्द जी, ओजस्वी और प्रभावशालीवक्ता स्वामी सत्यमित्रानन्द जी महाराज, संत शुकदेवदास जी शास्त्री, स्वामी सत्य प्रकाश जी शास्त्री, कर्मचन्द्र जी प्रेमी, पण्डित हरिद्वारीलाल जी, पटियाला के संत गीता राम जी। शहन्शाह राम को श्रद्धान्जली समर्पित करने वाले राम प्रेमियों में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रेमी थे। रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ के सेक्रेट्री श्री अयोध्या नाथ जी सिन्हा, दिल्लीशाखा की प्रधान श्रीमती माता मेला देवी जी, जगन्नाथ जी भसीन, श्रीमान् गोविन्द लाल जी बांगा, श्रीमान् एवं श्रीमती कृष्ण लाल जी भंडारी, पटना वाली माता श्रीमती रामप्यारी कोचर, श्रीमती शान्ति आनन्द दिल्ली, जम्मू, अम्बाला, चण्डीगढ़, बम्बई, कलकत्ता आदि से राम प्रेमी पधारे थे। २३ मई से २६ मई तक रामतीर्थ, आश्रम राजपुर में आचार्य प्रवर श्री स्वामी गोविन्द प्रकाश जी महाराज की अध्यक्षता में साधना सप्ताह मनाया गया। जिसमें निम्न लिखित महापुरुषों ने राम प्रेमियों को साधना की शिक्षा दी।

प्रात:काल ६ से ७ बजे तक ध्यान योग

—स्वामी स्वतंत्र मुनि जी,

७ से ८ बजे तक जलपान के लिए अवकाश,

८ से ९ बजे तक गीता के पन्द्रहवें अध्याय का मूल पाठ तथा व्याख्या।

—म० मं० स्वामी हंस प्रकाश जी वेदान्ताचार्य (एम०ए०)

९ से १०.०० बजे तक ईशावास्योपनिषद की व्याख्या,

—स्वामी स्वभावानन्द जी महाराज

१० से १०.३० बजे तक माताओं कीर्तन,

१०.३० से ११.३० तक रामचरित्रमानस की व्याख्या

स्वामी सूर्य प्रकाश जी महाराज

१२ से ४ बजे तक भोजन, विश्राम एव चाय पान

४ से ५ बजे तक श्रीमद्‌भागवत की व्याख्या

—स्वामी देव स्वरूप जी महाराज

५ से ६ बजे तक कुमारी उमा भारती का प्रवचन.

६ से ७.३० बजे तक मौन भ्रमण

७.३० से ८ बजे तक सायं कालीन आरती

८ से ९ बजे तक स्वामी अमर मुनि जी एवं परमाध्यक्ष जी महाराज का आशीर्वाद।

२९ ता० को हजारों की संख्या में राम प्रेमियों ने देहरादून से आश्रम में पधार कर साधना सप्ताह की पूर्णाहुति में भाग लिया। १ बजे समष्टि ब्रह्म भोज का आयोजन किया गया। सायंकाल ५ बजे यज्ञ का प्रसाद तथा पूज्यपाद सद्‌गुरुदेव भगवान के आशीर्वाद के सहित राम प्रेमियों ने अपने-अपने गृह को प्रस्थान किया। जून तक महाराज श्री परमाध्यक्ष जी आश्रम में ही विराजमान रहेंगे।

—सहसम्पादक

दूरभाष ४८३ राजपुर, ४२६७ देहरादून, तार ... न्त) देहरादून, रजि० नं. डी. एल. १५

राम-हृदय

कोई मनुष्य उस समय तक सर्वरूप परमात्मा के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारने लगे।

★

यह अनुभव करके कि सारा भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है, प्रत्येक भारत-सपूत को सम्पूर्ण भारत की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

* *

व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को किसी प्रकार राष्ट्रीय धर्म से उंचा स्थान न देना चाहिये, इनके यथोचित सामंजस्य से ही सुख मिल सकता है।

* *

ईश्वरानुभव के लिये आवश्यकता होती है संन्यास भाव की अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्याग कर इस परिच्छिन्नात्मा को भारत-माता की महान आत्मा से बिल्कुल अभिन्न कर दिया जाय।

* *

परमात्मा या परमानन्द के अनुभव के लिए आवश्यकता है ब्राह्मण भाव की अर्थात निरन्तर राष्ट्र की उन्नति के उपाय सोचने में बुद्धि अर्पण कर दी जाय।

बुक पोस्ट

ग्राहक संख्या 483

श्री/श्रीमती पुस्तकालय

स्थान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

डाकखाना

जिला हरिद्वार

मासिक पत्र—

"राम – सन्देश"

स्वामी रामतीर्थ मिशन

राजपुर, देहरादून (यू. पी.)

Pin-248009

स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून (उ०प्र०) के लिए प्रकाशक स्वामी गोविन्द प्रकाश द्वारा न्यू आईडियल प्रिंटिंग हाउस, ४ बी, नेशविला रोड देहरादून में, मुद्रित।

राम-सन्देश

जुलाई १९७७

एक प्रति
भारत में ८५ पैसे, विदेश में १ रु०

वार्षिक भेंट
भारत में १० रु०, विदेश में १२ रु०

आजीवन सदस्यता शुल्क :
भारत में —१००/-, विदेश में —५००/-

—संस्थापक—
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज

—व्यवस्थापक—
आचार्य स्वामी गोविन्दप्रकाश जी महाराज

संकेतिका

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)

सह सम्पादक—
काका हरिॐ "निर्द्वन्द्व"

★ ॐ ★

'राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'

—स्वामी राम

वेदान्त, अध्यात्म, संस्कृति, धर्म एवं भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा
स्वामी राम के आदर्शों का उपस्थापक, एकमात्र लोकप्रिय मासिक

राम-सन्देश

वेदोपनिषदां तत्त्वम् सत्यं नित्यं सनातनम्।
तत्सर्वं "रामसन्देशे" पत्रेऽस्मिन्नवलोक्यताम्॥

वर्ष २६ अंक ७ | राजपुर-देहरादून—जुलाई १९७१ | वार्षिक शुल्क : १० रु०, एक प्रति—८५ पै०,

भारतवर्ष

परन्तु परमानन्द रूप राम को इस लोक और परलोक में अनुभव करने के लिए और अपने निजी सूक्ष्म (विचारात्मक) धर्म को प्रत्यक्ष जीता-जागता व्यावहारिक बनाने के लिये तुम्हें अपने हाथों-पैरों से उस परिश्रम द्वारा, जो कभी शूद्रों के जिम्मे छोड़ रक्खा गया था, इस सन्यास भाव को, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भाव की वीरता को आचरण में लाना होगा। हमें उक्त सन्यासी भाव का शूद्रों के उद्योग से संयोग करना होगा। आज इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। जागो, ! जागो !

* *

संसार में केवल एक ही रोग है और एक ही औषधि। दैवी-विधान के आचरण से ही राष्ट्र निरोग और स्वतन्त्र बनाए जा सकते है। उसी विधान से मनुष्य महात्मा और देवताओं से भी अधिक श्रेष्ठ बनाया जा सकता है।

गतांक से आगे:—

व्यावहारिक वेदान्त

उन्नति का मार्ग

—स्वामी राम

प्रसिद्ध योद्धा पृथ्वीराज, जो कई एक युद्धों में मुसलमानों को पराजित कर चुका था, अन्त में भोग-विलास में डूब गया, और आपको आश्चर्य होगा कि अन्तिम बार जब वह युद्धक्षेत्र को गया, तो उसकी कमर उसकी रानी ने कसी थी । परिणाम क्या हुआ? युद्धक्षेत्र से मुंह काला करके असफल लौट आया। नेपोलियन, जिसके साहस और वीरता की धाक सारे संसार में जम गई थी, जब वाटरलू के समरांगण को जाने लगा, तो उसके पहले शाम को अपने आप को एक अपवित्र चाह में गिरा चुका था। परिणाम स्पष्ट है कि उसकी बड़ी विकट हार हुई । अभिमन्यु, कुरुक्षेत्र के युद्ध का प्रसिद्ध योद्धा, जिस दिन मारा गया, उससे पहले सायंकाल वह अपनी नवीन पत्नी के पास गया था, और वीर्य गिरा कर आया था। स्मरण रखो अपवित्र वस्तु में कुछ आनन्द नहीं है। जिस प्रकार गुलाब का फूल कैसा सुगन्धित होता है, किन्तु उसमें शहद की मक्खी भी रहती है। जब आपने नाक में लगाया, उसने नाक की नोक पर डसा। इस प्रकार संसार की कान्ति और कटाक्ष तथा सांसारिक वस्तुएं बड़ी चित्ताकर्षक होती है और बहुत ही भली जान पड़ती है, और वे आपके मनों को लुभाती है। किन्तु चखकर देख लो इनमें एक आध्यात्मिक विष है, जो आपको उन्नति करने से वंचित रक्खेगा। ये अनुचित अनुराग, ये अनुचित कामप्रियता, ये अनुचित सतीत्व का भंग करना, ये सब गुलाब के फूल के तद्वत् है, जिनमें शहद की मक्खी है और जो आपकी नाक पर काट लेती है। अतः नियम यह है यदि आपको ये सांसारिक बातें नहीं हिला सकती, तो आप संसार को अवश्य हिला सकते है।

तीसरी शर्त सफलता की एक आध्यात्मिक शर्त है। एक बादशाह की कथा है कि उसने एक कमरे में एक सींग लटका रखा था और उस सींग की खोल में पानी भरा था। बादशाह ने यह विज्ञापन दे रखा था कि जो कोई इस सींग का सब पानी पी ले और सींग खाली कर दे तो उसको वह अपना समस्त राज्य दे देगा । बहुत से लोग आये और उन्होंने पानी पिया, किन्तु कोई भी

उसको खाली नहीं कर सका। वह सींग देखने में तो जरा सा जान पड़ता था, किन्तु उसका सम्बन्ध नदी से था और यही कारण था कि वह खाली नही होता था। इस तरह यद्यपि आपके शरीर जरा-जरा से हैं, किन्तु उनका गुप्त सम्बन्ध उन समुद्रों के समुद्र ईश्वर रूप के साथ है। जो व्यक्ति इस सम्बन्ध को जगाये रखता है और इसको स्थिर रखता है, और उसकी शक्ति अनन्त है। आप सिवाय इसके और कुछ नहीं हो। जब यह मामला है, तो परमेश्वर तो सत्यकाम और सत्य संकल्प है, अत; आपके अन्तर्हृदय की तह में जो ख्याल है, वह सत्य होना चाहिये और उस ख्याल की सदैव विजय है। यथाः—

दौलत गुलामे-मन शुदो इकबाल चाकरम।

अर्थ दौलत मेरी गुलाम और इकबाल (विभूति) मेरी सेविका हो गई है।

अब राम कुछ उदाहरण इतिहास से देगा, जिससे सिद्ध होगा कि यह सिद्धांत बिल्कुल ठीक है। सिंहविक्रम महाराजा रणजीत सिंह अपनी सेना लिये हुये अटक नदी के निकट पड़ा हुआ था। उस पार शत्रु की सेना थी। रात का समय था, न वहां पर कोई नाव थी जिसके द्वारा पार किया जाय, और न ही वहाँ कोई दूसरा साधन मालूम होता था। अब बड़ी कठिनता थी कि क्या किया जाय। सिपाहियों ने रणजीतसिंह से आकर अपनी कठिनाईयां वर्णन की। वह तो जैसा श्री-कृष्णजी ने कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

अर्थ—"हे अर्जुन, तू सुख और दुःख तथा हानि और लाभ को सम करके एवं हार जीत का विचार न करके युद्ध के लिये खड़ा हो, ऐसा करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।" यदि तू युद्ध नहीं करेगा, तो महापाप का भागी होगा। इस विचार में मग्न था। उसको न विजय की प्रसन्नता थी और न पराजय का शोक था। वह तो इस ख्याल में मस्त होकर अपना धर्म पालन करता था। उसने सिपाहियों से कहा;—

जाके मन में अटक है, वाको अटक यहाँ;
जाके मन में अटक ना, वाको अटक कहाँ?

यह सुनते ही सेना कूद पड़ी और उस पार पहुँच गई। उसको देखकर शत्रु का साहस टूट गया कि जब ऐसे विशाल अगम नद से ये लोग बिना किसी नौका आदि के आन की आन में पार उतर आये हैं, तो इनका सामना करना असम्भव है। शत्रु भाग खड़े हुये, और क्षेत्र रण-जीत सिंह जी के हाथ रहा।

इसी तरह एक बार हजरत मोहम्मद साहब एक मुहिम (युद्ध) पर जाने के लिए बड़ी तैयारी कर रहे थे। किसी ने कहा कि आप इतनी तैयारी कर रहे हैं, किन्तु यदि आपकी हार

हुई तो कितनी लज्जा होगी इसके साथ ही आप का साहस भी टूट जायगा। इस पर वे खिल-खिलाकर हंस पड़े और कहने लगे—"परिश्रम करना मेरा काम है, न कि सफलता चाहना। मैं तो अल्लाह के हुक्म का काम कर रहा हूं, अपना फर्ज अदा कर रहा हूँ, इससे अधिक मुझको कुछ सम्बन्ध नहीं है।" फ्रांस और जर्मनी की लड़ाई में महाराज फ्रेडरिक की बिल्कुल हार हो गई थी। शत्रु के सिपाही उसके दुर्ग में घुस गये थे, और रंगरलियां मचा रहे थे; किन्तु फ्रेडरिक को अपने पक्ष में भगवान होने का निश्चय था। अतः उसने साहस को हाथ से न जाने दिया। उसने अपने लोगों को जमा किया और उनमें से कुछ को एक ओर भेज दिया कि तुम टीले पर जाकर खड़े हो, कुछ को दूसरी ओर भेज दिया, इसी प्रकार चारों ओर भेज दिया। इसके बाद स्वयं साहसपूर्वक बेधड़क दुर्ग के भीतर घुस गया ओर सिपाहियों से बोला कि तुम लोग हथियार रख दो। उन्होंने प्रश्न किया कि क्यों? उसने कहा, तुम नहीं देखते हो कि सेना अब सब ओर से आ रही है और तुम घेरे गये हो। यह देख कर वे लोग भयभीत हो गये। और सबने हथियार उसके सामने रख दिये। यदि आपका हृदय ईमान से भरा है, तो शत्रु क्या, सारा संसार आपके सम्मुख हथियार डाल देगा। यही हृदय का उत्साह है, जिसने विकट हार को पूर्ण विजय में परिवर्तित कर दिया।

> सारी खुदाई इक तरफ, फज्ले इलाही इक तरफ;
> न मंहगे पर न सस्ते पर, नहीं मौकूफ गल्ले पर;
> फतेह तो बस उसी की है, खुदा है जिसके पल्ले पर।

हाथी और सिंह की देह में कितना अंतर है! किन्तु देखो, सिंह के उत्साह और साहस के कारण हाथी को अपने शरीर के भारी होने पर भी सामना करना कठिन हो जाता है। हाथी को अपनी शक्ति पर बिलकुल भरोसा नहीं होता। वह सदैव झुण्डों में रहता है कि अकेला पार कोई उसको खा न जाय। सिंह यद्यपि तन में उससे छोटा है, किन्तु साहस उसमें भरा हुआ है। यही कारण है कि हाथी उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता। सिंह अपने भीतर ईश्वर अर्थात् आत्मा को मार नहीं रहा है, वरन् उसको व्यावहारिक रूप से स्पष्ट करता है।

क्रमशः

'धर्म-बोध'
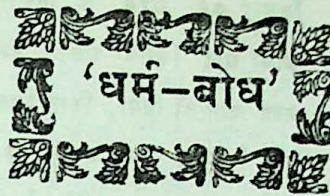
● बालसन्त स्वामी श्री सत्यदेव जी महाराज

—: गतांक से आगे :—

अब थोड़ा सा हिन्दू संस्कृति के बारे में विचार करेंगे। वैदिक काल में सेवा ज्ञान। उपनिषद् काल में ज्ञान का प्रेम तथा पौराणिक काल में प्रेम व सेवा को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। अखिल सत्ता परमात्मा के विधान से अपने सम्बन्ध को अटूट बनाये रखने के लिए यज्ञ का विधान किया गया। जिसका लक्ष्य मूल रूप से सेवा ही रही है। यज्ञो में गरीबों को भोज, दीन दुखियों की सहायता, ब्राह्मणों को यथेष्ट दान, प्राणी मात्र को स्नेह, मित्रों को धन्यबाद तथा देवताओं से परस्पर अस्तित्व का सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। प्रत्येक प्राणी मात्र को परमात्मा का स्वरूप समझकर कर्त्तव्य बुद्धि, एवं निष्काम भाव से उनकी सेवा करना ही यज्ञ का स्वरूप है। भगवान श्री कृष्ण, सृष्टि को ही यज्ञ का मूल कारण मानते है। वेदों ने यज्ञ को जीवन का साधन कहा है। पुराणों ने यज्ञ के बारे में अपना निष्कर्ष बड़ी ही मार्मिक भाषा में दिया, वे कहते हैं जिसने तुम्हें प्राण दिए, इतना सुन्दर तन दिया, सुखोपभोग के लिये पदार्थ दिये, उसमें से कुछ, उसके नाम अर्पित कर दो। किसी उपकार के निमित्त ईश्वर अर्पण करके किए गए कर्म को ही यज्ञ नाम सम्बोधित किया है। वस्तुतः प्राणी मात्र की यह बहुत बडी सेवा थी।

हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य ने अथवा आर्य संस्कृति ने प्रेम को यज्ञ से ज्यादा महत्वपूर्ण स्थान दिया है। हम ऐसा कह सकते है कि वेद और उपनिषद ने उपासना के नाम से इसको ही स्वीकारा है। पुराणों दर्शनकारों तथा रामायण के तत्व द्रष्टा ऋषियों ने इसे भक्ति कहा है।

अपने प्रियतम के निकट बैठकर उसे रिझाना उसके मधुर नाम व मन्त्र का जाप करना, सर्वस्व उसी का है, मैं तो निमित्त मात्र हूं। उस प्रियतम की सेवा ही मेरे लिए इष्ट है, वह ही मेरा जीवन साथी है, इस अनन्यता को ही आचार्यो ने भक्ति कहा। विभिन्न कालों में, विभिन्न अनुभवी मन्त्र द्रष्टाओं, तत्व दर्शियों एवं महान साहित्यकारों ने कहा कि प्रेम या परमात्मा के निकट होना ही जीवन है। मैं परमात्मा का हूं, सब उसी का है, यह भाव, प्रेम, साधना अथवा वेद की उपासना में प्रशस्त उद्धृत है। सत्य व अहिंसा ये भी प्रेम के ही अंग है। यह भी दर्शनों के अध्ययन से पता चलता है। प्रेम का

अवलम्बन लेने मात्र से सत्य और अहिंसा का पालन स्वतः ही हो जाता है। प्रेम तो जीवन की शाश्वत गहराई है, इस पर हम अलग से विचार करेंगे।

अब हम चलें आर्य संस्कृति के तीसरे पथ पर हिन्दू संस्कृति के बहु-आयामी साधन में, यज्ञ उपासना के बाद आस्तिक दर्शन (सनातन-दर्शन) जिसने सर्वोच्च परमात्मा से अपने को एक ही अनुभव किया, अथवा एक ही देखा। या हम यूँ कह सकते हैं एक ही देखना सत्य है, ऐसा उन्होंने माना। वे निरुपाधिक, भ्रम रहित ज्ञान को ही ज्ञान मानते हैं। मल-विक्षेप-आवरण तथा नाम रूपों सदा एक रस कूटस्थ चैतन्य ही सर्वत्र है, एवं व्यापक है, प्रत्येक प्राणी में, जड़ चेतन सब में वही है। उसके शिवाय कुछ नहीं। इस प्रकार सब उपाधियों को अलग कर स्वयं में जान लेना ही ज्ञान है। ज्ञान, स्वस्थिति ही मुक्ति मानी गई है।

संक्षिप्त रूप से, मैं हिन्दू संस्कृति के बारे में कुछ प्रकाश दे रहा था, मूलतः मेरा लक्ष्य धर्म के बारे में प्रकाश डालना था। आइए हम उसी पर चलते हैं। वर्तमान बीसवीं सदी में हम मुख्यतः धर्म की तीन धाराओं को देखते हैं। हिन्दू, मुस्लिम तथा ईसाई। इन सभी धाराओं का लक्ष्य तो एक है, किन्तु आचरण में, आचार संहिता में अवश्य काफी मतभेद हैं, मुझे यहां किसी धर्म के आचार व्यवहार एवं दर्शन के बारे में कोई टीका टिप्पणी नही करनी है, मुझे तो केवल यह बताना है कि अयोग्य आदमी के हाथ में जाकर सद्-गुणों का कितना दुरुपयोग होता है। सबसे पहले हम विचार करें, अरब के विस्तृत भू-मैदान से एक ऐसी आंधी आई जिसने सबको ईश्वर की सन्तान होने का शब्द दान तो दिया, किन्तु जितनी असहिष्णुता, कट्टरता, अन्ध विश्वास उस आंधी के झंझाबात में देखने को मिला उस प्रभु के प्यारों को जितने दुर्दिन देखने पड़े विश्व भ्रातृत्व की भावना को लेकर चलने वाली इस आंधी ने जितने भाईयों का खून किया इससे ज्यादा धर्म में गिरावट तथा स्वार्थ का नंगा नाच शायद ही कहीं देखने को मिले। इस आंधी ने सत्य और सेवा को ही अपना आधार माना था। पर सत्य और सेवा किसी तिजोरी में ही बन्द पड़े रहे।

इसके बाद हम देखते हैं, एक ओर आंधी सुदूर सागर पार "जिसे हम यूरोप कहते हैं," से आई वे भी अपनी आंधी में प्रेम और सेवा को लेकर चले थे, परन्तु मानव के अन्दर अहंकार वितृष्णा तथा परायेपन की भावना जितनी पहली आंधी न कर सकी उससे अधिक प्रेम के नाम पर इन्होंने किया। देश से, समाज से यहां तक की अपनी आत्मा से भी व्यक्ति को अलग कर दिया। अपने संकीर्ण विचारों एवं नियमों को ही धर्म मान कर जितना इन्होंने मानव जाति को नुकसान पहुंचाया ऐसा शायद ही अब कहीं देखने को मिले। इसके अन्तर्गत ही हम कुछ और विचार करना चाहेंगे, सिद्धान्त और आचरण में भेद किसे कहते हैं, और कैसा होता है? अहिंसा को ही परम धर्म मानने वाले, पूर्वी द्वीप समूह के मांसाहारियों को देखकर लगता है कि दर्शन व सिद्धान्तों की दुर्गति हम कितनी अच्छी तरह कर सकते हैं, इसी

प्रकार गंगा के तट वासी ज्ञान के पुजारी जब चूल्हा चौका और जाति-पाति को ही धर्म मान कर लुटिया डुबोते हैं। साथ ही मूर्तिभंजक को पश्चिम की ओर मुंह करके घुटने टेककर भीख माँगते देखता हूं। प्रेम का प्रचार करने वालों के द्वारा व्यक्ति को धर्म से अलग किया गया देखता हूं। अपरिग्रह के सिद्धान्तों की दुहाई देने वालों को गरीबों का खून चूसते हुए देखता हूं, तो लगता है, धर्म कितने गलत आदमी के हाथ में पड़ गया है। जिन्होंने धर्म की बहुत दुर्दशा की है, उसके प्राण ही बाकी हैं वह चल फिर नहीं पा रहा है। जिसको मैं मानव कहने में भी संकोच करता हूं। ऐसे मानव ने अपने स्वार्थ के कराण उसी वृक्ष को जड़ से खोदना प्रारम्भ किया है, जिसकी छाया में वे जी रहे हैं।

वस्तुत: मैं जितना भी शब्दों में कहना चाहूंगा वह उसी रूप में आपके पास नहीं पहुंच पाएगा, क्योंकि शब्द की अपनी सीमा है, आप की समझ की भी अपनी सीमा है। आइये थोड़ा और विचार कर लेते हैं। आप को क्या करना है, महत्व वस्तु का नहीं महत्व आपका है आप किस प्रकार देखते है, आपकी दृष्टि कैसी है, सर्वांग जीवन के लिए अपनी दृष्टि का बहुत बड़ा महत्व है, क्या आप को अपनी दृष्टि मिल गई है? धर्म का मूल स्वरूप है, "मैं" मेरी अपनी दृष्टि। मैं क्या देखता हूं। जब मैं चारों ओर झांक कर देखता हूं तो मुझे लगता है, आज कोई भी स्वयं में नहीं जी रहा है। किसी ने तन को अपना जीवन मान लिया है, किसी ने धन को, किसी ने अधिकार को ही जीवन मान कर उसी में कल्पते देखता हूं, तन से परे, धन से परे जो आप है वही आपकी दृष्टि है। यह दृष्टि कभी कही किसी राम में, किसी कृष्ण में बुद्ध में, महावीर में, मुहम्मद में, मीरा में, गुरुदेव नानक में प्रकट होती है? जो कि विश्व के पथ प्रदर्शक बन जाते हैं। जहां कामनाएं, स्वार्थ की संकीर्ण विचार धाराएं, अहंकार का आडम्बर, व्यर्थ दिखावा, अन्ध विश्वास का आग्रह नहीं रहता है, वहीं अपनी दृष्टि का उदय होता है। मैं उसी अपनी दृष्टि को ही परमात्मा की दृष्टि कहता हूँ और उस दृष्टि के अन्दर जो सरल अनुभूति है वही आत्मानुभूति है। उस आत्मानुभूति को पाकर स्वयं में आल्हादित होना ही धर्म है, आपके अमूल्य प्राणों में ही उस धर्म को पकड़ने की कला सीमित है। अपने को ऐसी दृष्टि में रखिए ऐसे साक्षी भाव में रखिए कि जैसे दीपक।

धर्म सिद्ध है, साधन है, आप की आकांक्षा है। उस आकाँक्षा को ध्यान से बलवती बनाइये। अपने भीतर सोई हुई शक्ति को जान लेना और उनको यथार्थ उपयोग में ला सकना ही धर्म की प्रक्रिया है।

आज के सन्दर्भ में, जब मानव भौतिक और अध्यात्म के बीच पिसा जा रहा है, ऐसी स्थिति में स्वयं की मुक्ति और स्वयं का आनन्द ही धर्म हो सकता है, जब तक हम स्वयं को आकांक्षाओं, वासनाओं एवं विचारों से मुक्त न करेंगे, उस धर्म की वह अलग एक झांकी आप में प्रवेश नहीं कर पायेगी।

(शेष पृष्ठ १० पर)

ब्रह्मचारी श्री हनुमान

लेखक श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

अंजनीगर्भसम्भूतो वायुपुत्रो महाबलः ।
कुमारो ब्रह्मचारी च हनुमन्ताय नमोनमः ।।

संसार में ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य महान से महान कार्य कर सकता है। सच्चे ब्रह्मचारी के लिए कोई भी बात असम्भव नहीं। मनुष्य की शक्ति जब इन्द्रियों के माध्यम से सुख में व्यय होने लगती है, तब वह संसार से ऊपर नहीं उठ सकता। हनुमान जी ब्रह्मचारियों के अग्रगण्य हैं। उन्होंने ने अपने ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग, तितिक्षा, प्रज्ञा तथा विलक्षण बुद्धि कौशल से श्री रामचन्द्रजी को अपने वश में कर लिया। उन्होंने सीतान्वेषण के समय अपनी बुद्धिमता का जैसा परिचय दिया, उससे भगवान श्री राम अत्यन्त प्रभावित हुए और वे सदा के लिए श्री हनुमान जी के हो गये। उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि हनुमान मैं तुम्हारे ऋण से कभी उऋण ही नहीं हो सकता। मैं सदा तुम्हारा ऋणी ही बना रहूंगा।

यों तो ऋक्षराज जाम्बान के स्मरण दिलाने पर हनुमान जी को अपनी शक्ति-सामर्थ्य का स्मरण हो आया वे बोले-आप लोग मुझ से जो कराना चाहें, वह करा सकते हैं। यह शत योजन लम्बा समुद्र तो क्या, ऐसे सैकड़ों समुद्र को मैं लांघ सकता हूं। रावण तो क्या मैं उसकी पूरी-की-पूरी लंका को उजाड़ कर समुद्र में फेंक सकता हूँ, रावण को मच्छर की भांति पकड़कर मसल सकता हूं। आप कहें तो लंका को उखाड़कर और रावण को मारकर सीता को ले आऊं। और कहें तो मैं रावण के समस्व परिवार को श्री राम के चरणों में लाकर रख दूं।

जाम्बान् ने देखा कि अब तो हनुमान जी आवश्यकता से अधिक उत्तेजित हो गये, तब उनको समझाते हुए वे बोले हनुमान ? देखो हम तो भगवान के दूत हैं। दूतों को सदा मर्यादा में रहना चाहिए। दूत लड़ाई झगड़ा नहीं कर सकता, दूत की बात का राजा लोग बुरा भी नहीं मानते, उसे दण्ड का भी विधान नहीं; क्योंकि दूत जो कहता है वह अपने स्वामी के अभिप्राय को प्रगट करता है अतः तुम न तो लंका उखाड़ना और न रावण को मारना। अनेक प्रकार से जाम्बान् हनुमन्त लाल जी को समझाने लगे। फिर हनुमान जी कहने लगे।

बूढ़े बाबा ! आपकी बात मैं समझ गया सीता जी की सुध लेकर शीघ्र ही लौट आऊंगा, किन्तु मुझे कोई

मारे पीटे तो मैं उससे आत्म रक्षार्थ लडाई न करूं क्या ?

हँसकर जाम्बान् ने कहा–अपनी रक्षा तो कर ही लेना व्यर्थ में लड़ाई मोल न लेना।

हनुमान जी ने आज्ञा लेकर पैर छुए और अपने सभी साथियों से मिलकर चलने लगे–देखते ही देखते उन्होंने अपने शरीर को बढ़ाना शुरू किया और पर्वताकार हो गये। हनुमान समुद्र में कूदकर चलने लगे मालूम नहीं होता था कि वह तैर रहे हैं या आकाश में उड़ रहे हैं–वायु वेग के समान वह उड़े जा रहे थे। सभी लोग उनके अद्भुत अलौकिक पुरुषार्थ को देखकर आश्चर्य चकित हो इकटक उन्हें निहार रहे थे। समुद्र के जल जन्तु भय से कांपकर समुद्र के जल में नीचे तल में छुप गये। आकाश में पक्षियों ने उड़ना बन्द कर दिया। और वह वायु वेग के समान जल के ऊपर उड़ते ही जा रहे थे।

हिमालय के पुत्र नाक ने, जो समुद्र में छिपा हुआ है, कहा भी, हनुमान विश्राम कर लो, हनुमान जी उसे धन्यवाद करते हुए चलते ही गये और कहते गये कि जब तक श्री रामचन्द्र जी का कार्य न हो जाय तब तक विश्राम कहाँ ?

सर्पों की माता सुरसा को देवताओं ने हनुमान जी की परीक्षा लेने भेजा। वह कहने लगी ओ वानर ? खड़ा रह मैं तुझे खाऊंगी देवताओं ने मेरे लिए तुम्हें ही आहार के निमित्त भेजा है।

हनुमान जी ने कहा–मां ? मैं शीघ्रता में हूँ, लौट आऊं तब खा लेना।

उसने कहा–बातें मत बनाओ। तुम बहुत हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी हो मैं तुम्हें खाकर तृप्त हो जाऊंगी। हनुमान जी कहने लगे अच्छा नहीं मानती तो फाड़ मुख और दुगने हो गये। जैसे जैसे सुरसा मुख फाड़ती गई हनुमान जी दुगने होते गये जब सुरसा ने अपना सौ योजन मुख बढ़ा लिया तब हनुमान जी छोटा रूप बनाकर उसके मुख में घुस गये। उसके इस प्रकार से पुत्र बन गये और बाहर निकल कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बोले मां ! अब तो तुम्हारे उदर में चला गया, अब आज्ञा दे दो।

सुरसा इनके बुद्धि कौशल को देखकर परम प्रसन्न हुई, और तरह-२ के आशीर्वाद देकर चली गई। ये आगे बढ़ गये।

आगे चलकर एक विघ्न और आ गया। राहु की माता सिंहिका, जो समुद्र में रहती थी, आकाश में उड़ने वालों की समुद्र में छाया पड़ती हुई देखकर उन्हें खींच कर खा जाती थी। उसने इनकी छाया को भी खींचा। ये उसकी धूर्तता समझ गये, और कसकर एक मुक्का लगाया, और लगते ही वह परलोक सिधार गई। और समुद्र पार पहुँच गये। वहां पर उन्होंने सोचा कि लंका में इस विशाल शरीर से प्रवेश करना ठीक नहीं। इनके पास समस्त सिद्धियां तो रहती ही थी। इन्होंने अणिमा सिद्धि के द्वारा अपना बहुत ही छोटा

रुप बना लिया।

लंका की अधिष्ठात्री देवी किसी अपरिचित व्यक्ति को बिना अनुमति के लंका में नहीं जाने देती थी, बहुत छोटा रुप होने पर भी उसने हनुमान जी को देख लिया और कहने लगी ! कौन है तू, चोर की भांति मेरा तिरस्कार करके लंका में प्रवेश कर रहा है खड़ा हो जा नहीं तो मैं तुझे खा जाऊंगी।

हनुमान जी ने बात को बढ़ाया नहीं। और बिना कुछ सोचे समझे ऐसा मुक्का मारा वह अचेत होकर गिर पड़ी और कहने लगी कि तुम अवश्य ही श्री राम के दूत हो और लंका का विनाश सन्निकट आ गया है। ब्रह्मा जी ने मुझे कहा था कि जब तूं बन्दर के मुष्टि प्रहार से अचेत हो जायेगी, तब समझ जाना कि लंका का विनाश होगा इतना सुनते ही रात्रि के समय हनुमान जी ने लका में प्रवेश किया।

श्री राम-काज करने वाले ब्रह्मचारी को सात्विक, राजसिक, और तामसिक-तीनों प्रकार की मायाऐं आकर घेरती हैं, और उसे भांति-भांति के प्रलोभन देती हैं। जो इनके फंदे में फंस जाता है वह गिर जाता है और जो इन पर विजय प्राप्त कर लेता है वह आगे बढ़ जाता हैं। हनुमान जी इन पर विजय प्राप्त कर आगे बढ़े।

अब उन्हें सीता के अन्वेषण की चिन्ता हुई। पहले उन्हें घुड़साल दिखाई दी, उसमें घुसे तो देखा कि असंख्य घोड़े बंधे हैं। और चारों ओर सीता को खोजने लगे। इसी प्रकार गौशाला, हस्तिशाला में खोज करके कहने लगे मैं कैसा पागल हूँ जो आदमी को पशु स्थान में ढूंढ रहा हूं, स्त्री तो स्त्रियों में ही हो सकती हैं। यह सोचकर रावण के अन्तपुर में गये वहाँ एक सोने के पलंग पर रावण सो रहा था। उसी के समीप गलीचों पर सहस्र स्त्रियाँ सो रही थी, तो वह सभी स्त्रियों के मुख को देखते सोचते है शायद यह सीता हो क्योंकि देखा तो नहीं था और फिर कहने लगे सीता लंका में है फिर खोंजूँ। और निश्चय किया कि सब काम छोड़ कर सीता को खोजना है। और वह खोजने लगे। ❃

'धर्म-बोध'

(पृष्ठ ७ का शेष)

तो महत्व इस बात का नहीं कि जिसको आपने स्वीकार किया वह कैसा है? महत्व इस बात का है कि स्वीकार करने वाले आप कैसे है? स्वाति की बूंद मणि भी बनती है और हलाहल विष भी। आज आवश्यकता है, धर्म रूपी स्वाति बूंद को मणि बनाने की। मैं युवा-वर्ग की तलाश में हूं जो धर्म के इन स्वाति बूंदों को लेकर मणि बना सके। इन स्वाति बूंदों को हम ने जहर बनाते तो देखा है, आइये हम प्रयास करके उन्हें मोती बनाएं।

समाप्त

"भक्त ध्रुव"

"स्वामी सत्य प्रकाश" "शास्त्री"

ध्रुव स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे। महाराज उत्तानपाद की बड़ी पत्नी सुनीति की कोख से उन का जन्म हुआ था। एक समय की बात है, राज दरबार लगा था। महाराज उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचि एवं उसके पुत्र उत्तम के साथ राजसिंहासन पर विराजमान थे। सुरुचि के रूप लावण्य ने राजा को वशीभूत कर लिया था। सुरुचि की रुचि ही उत्तानपाद की रुचि हो गई थी। एक दिन पांच वर्ष का बालक ध्रुव अपने सखाओं के साथ खेलता खेलता राजसभा में पहुँचा। अपने छोटे भाई उत्तम को पिता की गोद में बैठे देखकर ध्रुव ने भी पिता की गोद में बैठना चाहा। सुरुचि इसे कैसे सहन कर सकती थी? सुनीति से उसका सौतियाडाह जो था। "अरे, तुम्हारा इतना साहस? यदि पिता की गोद में बैठना चाहते हो तो भगवान की तपस्या कर प्रसन्न करके फिर मेरी कोख से जन्म लो तब तुम्हे पिता की गोद में बैठने का अधिकार प्राप्त हो सकता है।" इतना कहकर ध्रुव को राजा की गोद से उतार दिया।

यद्यपि ध्रुव अबोध बालक पूरी बात न समझ सका, इतना अवश्य समझा "मेरा अपमान हुआ भगवान की आराधना से ही अपमान से छुटकारा मिल सकता है।" इतनी बात उसकी समझ में आ गई। इतनी सी ही बात भगवत्कृपा का अनुभव कराने में हेतु बन गई।

रोना ही तो बालक का बल है। ध्रुव रोता रोता अपनी मां सुनीति के पास पहुंचा। सुनीति ने उसकी पूरी बात सुनी और कहने लगी, "बेटा मै सच मुच में अभागिनी हूँ। तुम्हारे पिता तुम्हारी छोटी माँ सुरुचि के हाथ बिके हुए हैं, बेटा तुम्हारी अभिलाषा तो भगवान ही पूर्ण कर सकते है और भगवान विष्णु की आराधना से संसार में सब कुछ सुलभ है।" यह बात ध्रुव के मन में घर कर गई। वह कहने लगा:—

"मां मुझे आज्ञा दो, मैं भगवान से मिलकर उन्हीं से सब कुछ प्राप्त करूंगा।" माँ सुनीति समझाने लगी बेटा बड़े होने के बाद यह कार्य करना अभी बालक हो – अनेक प्रकार के समझाने से जब माँ ध्रुव के निश्चय में कुछ भी परिवर्तन न कर सकी तो आज्ञा दे दी।

भगवान कैसे और कहां मिलते हैं यह तो उसे ज्ञात न था, परन्तु मिलते है यह निश्चय करके वन की राह पकड़ ली। भगवान की ओर बढ़ने

वाले की सहायता भगवान स्वयं करते है। रास्ते में महर्षि नारद जी मिल गये। नारद ध्रुव की पूरी बात सुनकर विस्मय प्रकट करने लगे और कहने लगे 'बेटा! इतनी छोटी उम्र में मानापमान? भगवान का मिलना कठिन है बड़े-२ योगी महर्षि हजारों वर्ष तपस्या करके भी उनका दर्शन अनेक जन्मों के पश्चात कर पाते हैं। नारद की बात सुनकर ध्रुव कहने लगा आप ऐसा उपाय बताइये जिससे जल्दी मिल जायें, और नारदजी के चरणों में प्रणाम किया। देवर्षि का हृदय ध्रुव की निष्ठा देखकर पिघल गया और अमोघ आर्शीवाद दिया बेटा, तेरा कल्याण हो।

ध्रुव यमुना किनारे मधुबन में जाकर आराधना करने लगे। और दिन प्रतिदिन कठोर व्रत करने लगे। निर्भय निर्द्वन्द उपासना चलने लगी। मन वाणी और शरीर से प्रभु के साथ एकाकार हो रहे थे।

साधना में भय प्रलोभन रूपी बाधाएं आने लग जाती है। डराने के लिये बड़ी बड़ी राक्षसियां आई, माया ने भी मां सुनीति का रूप धारण करके ममता का जाल फैलाया। उन्होंने सब कुछ अनसुना कर दिया और प्रभु के ध्यान में मग्न रहे। किसी भी तरह के विघ्न उनकी साधना में बाधा न डाल सके।

उनकी कठोर तपस्या के छः महीने पूरे होने जा रहे थे। सुरपति घबरा उठे-'कहीं ध्रुव हमारा पद न छीन ले।' देवता लोग भगवान के पास पहुंचे। भगवान ने आश्वासन दिया कि ध्रुव मेरा भक्त है मैं उसे दर्शन देकर तृप्त करूंगा। भगवान अपने भक्त का कष्ट सहन नहीं कर पा रहे थे। वे तुरन्त ध्रुव के पास पहुंचे, लेकिन ध्रुव अपने ध्यान में मग्न रहे। अन्त में भगवान को उनके ध्यान से अपने स्वरूप को हटाना पड़ा, तब कहीं ध्रुव ने विकल होकर नेत्र खोले साक्षात भगवान नारायण को अपने सामने देखकर ध्रुव उनके चरणों में लोटपोट हो गया। प्रेम से वाणी गदगद हो गई, चाहते हुये भी न कुछ बोल सके। वे केवल हाथ जोड़े प्रभु के सामने खड़े है। भगवानश्री हरि ने अपना वेदमय शंख ध्रुव के कपोल से स्पर्श करा दिया। शंख का स्पर्श होते ही उसे दिव्य वाणी प्राप्त हो गई। सम्पूर्ण वेद ज्ञान सुलभ हो गया, और स्तुति करने लगा।

भगवन आप परमानन्दमूर्ति हैं, जो लोग ऐसा समझकर निष्काम भाव से आपका भजन करते हैं: उनके लिये राजादि भोगों की अपेक्षा आपके चरण कमलों की प्राप्ति ही भजन का सच्चा फल है। हे प्रभु आप समस्त संसार के भक्तों की सन्तों की रक्षा करते हैं।

प्रभो आपकी कृपा का क्या कहना! बड़े बड़े ऋषियों और मुनियों को भी जिस रूप में दर्शन नहीं होते, आपने उस दिव्य स्वरूप का

मुझे दर्शन केवल ६ मास के अन्दर ही करा दिया। अब मैं कृतार्थ हो गया। आपके दर्शन करने के बाद मेरे मन में कोई कामना नहीं रही। मुझे केवल आपके सांनिध्य की इच्छा है।

बेटा ध्रुव ? तुम्हारे मन में कोई कामना नहीं है लेकिन मेरी आज्ञा का पालन करना होगा। मैं तुम्हे जो पद देता हूं वह ग्रहण करना होगा। मेरी आज्ञा से तुम्हें राज्यभार सम्भालना होगा। ग्रह-नक्षत्रों के ऊपर तुम्हें ध्रुव-पद प्राप्त होगा। जीवन भर तुम पर मेरी अनोखी कृपा बरसती रहेगी, कल्प के अन्त में तुम मेरे पास आओगे। कृपालु श्री हरि ने ध्रुव को कृपामय आदेश दिया।

भगवान श्री हरि के विरह का सन्ताप ले कर राज्य की कामना न होते हुए भी प्रभु के आदेशानुसार ध्रुव वन से लौट आये। पिता सहित सभी राजपुरुषों एवं सौतेली माँ ने उनका अभिनन्दन कर आर्शीवाद दिया। सुनीति ने तो आरती उतारते हुये प्रेमाश्रुओं से अभिषेक किया।

युवावस्था में ध्रुव ने अपने माता-पिता की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

ध्रुव के भाई उत्तम को आखेट का दुर्व्यसन था। एक बार आखेट करते करते स्वयं भी एक यक्ष का आखेट बन गया। ध्रुव भाई उत्तम के निधन की जानकारी के लिये वन में गए। वहां उनका यक्षों से घमासान युद्ध हुआ। अन्त में पितामह मनु ने युद्ध में आकर भयंकर संहार बन्द कराया। यक्षपति कुबेर भक्त ध्रुव के व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुये। कुबेर ने ध्रुव को वरदान देना चाहा। परन्तु ध्रुव ने उनसे विनम्रता पूर्वक भगवद्भक्ति की ही याचना की।

ध्रुव ने यज्ञ-यज्ञादि किये। और भगवान शंकर को भी प्रसन्न करके भगवदभक्ति का आर्शीवाद प्राप्त किया।

ध्रुव ने छत्तीस सहस्त्र वर्ष तक धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन किया। भगवत्प्रेम का दिन-प्रतिदिन विकास हुआ। अन्त समय में भगवान के पार्षद सुनन्द एवं नन्द उन्हें लेने आये और वे विमान आरूढ़ हो सदेह भगवद्धाम को चले गये। ★

श्रद्धा और बल

यह कभी न सोचना कि आत्मा के लिए कुछ असम्भव है। ऐसा कहना ही भयानक नास्तिकता है। यदि पाप नामक कोई वस्तु है तो यह कहना ही एकमात्र पाप है कि मैं दुर्बल हूँ अथवा अन्य कोई दुर्बल है।

—स्वामी विवेकानन्द

दिल्ली में उद्घाटन समारोह सम्पन्न

चन्द्रवार (त्रयोदशी) का पावन दिन मिशन के इतिहास का एक आवश्यक अंग उस समय बना जब मिशन की दिल्ली में स्थापित नयी शाखा के भवन का हमारे परमपूज्य श्री परमाध्यक्ष जी महाराज के कर कमलों से विधिवत् उद्घाटन हुआ। रानीबाग (शकूरबस्ती) में स्थित स्वामीराम के उदात्त विचारों के प्रचार एवं प्रसार का यह केन्द्र उस पुण्यमयी भूमि से ज्ञान-भक्ति-कर्म की रश्मियों को दूर-२ तक फैलायेगा जो इस संस्था की उत्साही एवं स्वामी राम तथा स्वामी हरिॐ जी महाराज की अनन्य श्रद्धालु प्रधाना श्रीमती मेलादेवी जी मल्होत्रा तथा उनके पारिवारिक सदस्यों द्वारा मिशन को भेंट रूप में दिया गया है। इससे इस क्षेत्र के निकटवर्ती निवासियों को कितना लाभ होगा, इसका परिचय समारोह में उपस्थित जन-समूह से मिलता है।

प्रातः हवन से इस अनुष्ठान का शुभारम्भ हुआ सबकी उपस्थिति में वेद मन्त्रोच्चारण के साथ श्री परमाध्यक्ष जी महाराज ने जल-कलश के साथ हॉल में प्रवेश किया। उसके बाद मिशन के यात्री मन्डल द्वारा प्रार्थना, राम-स्तवन और भजन के साथ कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। दिल्ली के विद्वान श्री राम वागीश जी ने इस अवसर की महत्ता पर प्रकाश डाला और मल्होत्रा परिवार का इस 'अनुपम' भेंट के लिये धन्यवाद दिया। पूज्य श्री स्वामी अमरमुनि जी महाराज ने ज्ञान मार्ग की सर्वोपरि विशेषता को स्पष्ट करते हुए इस नव-निर्मित केन्द्र की आवश्यकता पर बल दिया। सौभाग्य से इस समारोह में बाल-सरस्वती कुमारी उमा भारती जी भी पधारी थी। उनके सुलझे हुए विचारों और उनको व्यक्त करने की अनूठी एवं मनोहारी शैली ने आधे घन्टे तक सबको मंत्र मुग्ध बनाये रखा। अन्त में श्री परमाध्यक्ष जी महाराज के आशीर्वचन श्रवण करने का सबको सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने बहन मल्होत्रा जी तथा उनके परिवार की इस 'भेंट' को मिशन के द्वारा की जा रही सेवाओं की एक बड़ी कड़ी बताया, मिशन के कार्यकर्ताओं, रानीबाग के उत्साही कार्यकर्ताओं और वहाँ के निवासियों को इस महान कार्य के लिये धन्यवाद देते हुये स्वामी राम के पुनीत विचारों पर विशद रूप से प्रकाश डाला। उनकी इस घोषणा का सबने स्वागत किया कि मिशन के द्वारा इस केन्द्र पर शीघ्र ही एक निःशुल्क होम्योपैथिक औषधालय खोला जायेगा जिससे आध्यात्मिक योजन के साथ साथ शरीर को स्वस्थ रखने के विषय में भी जानकारी तथा सहायता मिल सके। उन्होंने यह भी कहा कि वहां एक पुस्तकालय एवं वाचनालय भी खोलने का विचार है। आरती तथा प्रसाद वितरण के अनन्तर स्वामी राम की जय-जयकार की मृदुल ध्वनि के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

प्रेषक—भारतबन्धु शर्मा
प्रधान सचिव
स्वामी रामतीर्थ मिशन, दिल्ली

ओ पथिक

मत चलो असत् के पथ पर, सत्पथ पर पथिक चलो रे

है ज्ञान तुम्हे माया का, फिर फंसे हो क्यों दलदल में ?
स्वातन्त्रय तुम्हारी इच्छा, फिर बन्धे हो क्यों बन्धन में ?
अमृतत्व समक्ष तुम्हारे, फिर क्यों पीते हो विष प्याला
है वाह्य स्वच्छता तो क्या, उर में यदि भाव है काला
कर स्वच्छ हृदय तुम राही, आगे कुछ और बढ़ो रे।
मत चलो असत् के पथ पर, सत्पथ पर पथिक चलो रे।

है पथिक तुम्हारा जो पथ, वह पथ है दूर भ्रान्ति से,
यदि आये शत्रु सम्मुख, तो विजयी हो शान्ति से,
दिग्भ्रान्त करे यदि कोई, तब रखना स्मृति को दृढ़ तुम,
दे कोई लालच धन का, मत तजना अपना पथ तुम,
कर त्याग एषणाओं का, तुम आत्मन् में विचरो रे !
मत चलो असत् के पथ पर, सत्पथ पर पथिक चलो रे।

तुम हो इक पथिक कभी भी यह ध्यान न छुटने पाये ।
चलना होगा बहु अग्रिम, आशा को उर में बसाये ॥
उद्विग्न न होगा दुःख में, सुख की इच्छा से विरहित ।
तुम आगे बढ़ते जाना, इच्छा ले उर में जगहित ॥
जगहित तुम जीना मरना अर्पित सर्व स्वकरो रे ।
मत चलो असत् के पथ पर, सत्पथ पर पथिक चलो रे ।

— काका हरिॐ 'निर्द्वन्द्व'

स्वामी राम का जीवन काव्य–

राष्ट्रानुभूति से विश्वानुभूति तक

प्रो॰ हरबंस राय ओबराय,
निदेशक, संस्कृति बिहार
महावीर चौक, अपर बाजार, रांची।

"मैं ही भारतवर्ष हूँ, यह भारत भूमि ही मेरा शरीर है, उसका वह कुमारी अन्तरीप ही मेरे चरणों का अन्तिम भाग है, उसका मुकुट रूप हिमालय ही मेरा शीर्ष है, मेरे इस जटा जूट से ही गंगा की पुनीत धारा बह रही है और उसके शिरो भाग से ब्रह्मपुत्र तथा सिन्धुनदी उच्छ्वासित हो रहे हैं। मेरे कमर के आसपास के कोपीन को विन्ध्याचल की यह विस्तृत मेखला बांधे हुए है। मेरा एक पैर यदि कारोमण्डल तट है तो दूसरा है माला बार। मै ही सारा का सारा भारत हूँ और उस की पूर्वी और पश्चिमी श्रेणियां ही मेरी भुजाएं है जिन्हें फैलाकर समस्त मानव जाति को अपने गाढ़ालिगन में कसने के लिये मैं उत्कंठित हूँ। मेरा प्रेम विश्वव्यापी है। कैसा अद्भुत है मेरा शरीर। वह अपलक अनन्त आकाश की ओर टकटकी बांधे खड़ा है। पर उससे भी अद्भुत तो है उसमें बसने वाली आत्मा जो चराचर की आत्मा है। तभी तो जब चलता हूँ तब अनुभव करता हूँ कि सारा भारत ही चल रहा है। जब मैं बोलता हूं तो अनुभव करता हूं कि सारे भारत की ही वाणी गूंज रही है। जब मै साँस लेता हूँ तो मालूम होता है कि मानों स्वयं भारत माता ही सांस ले रही है। मैं ही भारत माता हूं, मैं ही शंकर हूं, मैं ही शिव हूँ।"

यह किस तत्वदर्शी लोकनायक की अमृत बाणी भारत माता के कोटि-कोटि सुतों के अन्तराल को स्पर्श कर उनके अन्तरतम में सोई हुई विश्व प्रेम की रागिनी को जगाकर धरती के सब पुत्रों को अपने असीम प्रेम की स्वगंगा में नहला देने के लिये आकुल है। संसार के कोटि-कोटि जनों को आत्मानन्द का अमृत बाँटने वाले उस सन्त का नाम है स्वामी रामतीर्थ परमहंस।

कोटिशः वन्दित ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ परमहंस वर्तमान युग में भारत की प्राचीन गौरव गरिमा के जीवन्त स्मारक थे। हमारी धरती ही

उन जैसे पावन ऋषियों की चरणधुली से पवित्र हो जाती है। यह कान्तदर्शी महापुरुष स्वामीराम भगवान शंकराचार्य की ही भांति आये तो थे केवल ३३ वर्ष की अल्पायु लेकर किन्तु इसी अल्प जीवन में ही वे हमारे अन्तस्थल पर अपने स्वर्गीय व्यक्तित्व की ऐसी अमिट छाप अंकित कर गये कि आधुनिक भारतवर्ष की कोई भी कहानी उन ऋषि तुल्य लोकनायक की अर्चना के बिना अधूरी रहेगी।

बादशाह दुनियाँ के हैं, मोहरे मेरी शतरंज के।
दिल्लगी की चाल है, सब शर्त सुलहो जंग के।

दुनियां भर के बादशाहों को चुनौती देने वाले शहनशाह राम का जीवन वेद की ऋचा के समान पवित्र, संगीतमय किन्तु संक्षिप्त है। उनके जीवन की संक्षिप्त गीतिका भी देववाणी के समान अनादि और अनन्त है। उन जैसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के चरणों को चूमकर पृथ्वी भी अपना भाग्य सराहती है।

पंचनद प्रदेश की विभाजन पूर्व की राजधानी लाहौर के निकट गुजरांवाला जिला के मुरारी वाला गाँव में आज से १०४ वर्ष पूर्व सन् १८७३ में दीपावली के कोटि-कोटि दीपों के प्रकाश में इस कुल दीपक का जन्म, जरा-गण पूजित गोस्वामी तुलसीदास के नाम से विभूषित पावन गोसाई कुल में, गोसाई हीरानन्द जी के पावन गृह में हुआ। बालक का नाम तीर्थराम रखा गया। एक वर्ष की अवस्था में दुधमुहे बालक के सिर से वात्सल्यमयी माता की शीतल छाया उठ गई। अपनी वृद्धा बुआ की गोदी में यह भावी ब्रह्मवेत्ता मन्दिरों में जाता, अपनी नन्हीं-नन्हीं आंखों से देवदर्शन करता। अपने कोमल-कर्णों से भगवदकथा सुनता। अपनी तुतली वाणी से ओम् ओम् गाता तथा शंख की ओंकार सूचक ध्वनि को सुनकर रोमांचित हो जाता।

घोर निर्धनता के चक्रव्यूह में पड़कर भी यह तेजस्वी बालक ज्ञान-साधना के कठिन पथ पर निरन्तर बढ़ता रहा तथा २० वर्ष की अवस्था में प्रान्त में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए एम०ए० की गणित की परीक्षा पास करली। एफ०सी० कालिज लाहौर में प्रोफेसर पद पर कार्य करते हुए उनके मन में कृष्ण की भक्ति की तरंग ऐसी उठी कि उन्हें देखकर गौरांग महाप्रभु का स्मरण हो जाता था। रावी के तट पर प्राण प्यारे घनश्याम कृष्ण के विरह में लोट-पोट होना तथा अपने प्राण प्रियतम को ऊंचे स्वरों में पुकारना इनकी साधना के प्रारम्भिक पड़ाव थे। गर्मी की छुट्टियों में मथुरा वृन्दावन जाते तथा कृष्णलीला का रसामृत पान करते।

भारत-गौरव स्वामी विवेकानन्द के लाहौर पधारने पर गोसाई तीर्थराम जी के हृदय तल में छिपा हुआ आध्यात्मिकता का पावन झरना फूट निकला, उनकी वेदांत प्रचार की हृदयस्थ लाला

बलवती हो उठी । आप प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में हिमालय की हिमानी चोटियों पर जाते तथा आत्मचिन्तन करते ।

सन् १९०१ में जब वैराग्य का स्रोत उनके भीतर न समा सका तो उन्होंने पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर गेरवा वस्त्र धारण कर विधिवत् सन्यास ले लिया । उनके मुखमण्डल पर एक अपूर्व तेज दृष्टिगोचर होता था । नेत्रों में विशेष शक्ति थी । वाणी में एक जादू सा था ।

जिसको मानवता की फुलवाड़ी के इस सुन्दरतम पुष्प को निहारने का अवसर मिला, वह खड़ा खड़ा उसे निहारता रहा और मृर्त्यलोक से परे एक दिव्य लोक की कल्पना करता रहा। जिसकी स्वर्गीय आभा उनके सुरभित बदन पर खेलती रहती थी उनकी व्याख्यान सभाओं में ऐसा अमृत था कि उसे प्राप्त करने के लिये साक्षात् देवता भी लालायित रहते होंगे ।

पूर्व तथा पश्चिम दोनों को अपनी भुजाओं में भरकर आलिंगन करने के लिये आकुल स्वामी जी न केवल मानवमात्र वरन् प्राणीमात्र के सगे बन्धु के समान थे । हिमालय के महान पर्वतों के बीहड़ जगलों में जहाँ वे फूलों से बातें तथा नदियों से क्रीड़ा विनोद करते रहे, वहां पर शेरों, चीतों तथा बाघों से भी अपने असीम प्रेम से भरकर आलिंगन करते रहे ।

१९०२ में स्वामी जी अरुणोदय के देश, जापान में गये तथा वहाँ अपनी रहस्य दर्शिनी वक्तृताओं से वहां के समाज को चकित कर दिया। वहीं पर उच्च शिक्षा के लिए गये हुए एक भारतीय युवक पूर्णसिह भी स्वामी जी के चरणों की ओर आकृष्ट हुये । जापान के एक महान विद्वान तकातकुसु ने स्वामी जी को अपनी पुष्पाञ्जलि चढ़ाते हुए लिखा "स्वामी जी जैसा व्यक्ति मैने कभी नहीं देखा । वह स्वयं धर्म हैं, सच्चे कवि है और सच्चे दार्शनिक है ।

"पतझड़"

—स्वामी तीर्थानन्द (अज्ञ)

इन्कलाब ?
कब रूका है दबाने से !
महताब ?
कब रूका है जल जाने से !

मायूस न हो ; काली रात भी ढल जायेगी ;
बाद पतझड़ के बहार फिर आयेगी ।
मिट जायेगा हर निशां, पतझड़ का ;

हरियाली फिर छायेगी ;
कलियों की मुस्कराहट, पक्षियों की चहचहाट,
नव जीवन लायेगी !

पूर्व के एक छोर से स्वामी जी दूसरे छोर पर स्थित अमेरिका देश की ओर चले । जब वहां वेदांत की पावन पताका को फहराने के लिए धन कुबेरों के देश अमेरिका पहुंचे तो वहाँ के नर-नारियों ने उन्हें 'मूर्तिमान ईसा', कहकर श्रद्धापूर्वक उनकी आरती उतारी । सानफ्राँसिस्को के एक विद्वान डा० हिल्लर ने स्वामी जी की प्रशस्ति में लिखा, "स्वामी जी ज्ञान की ज्योति है, हिमालय से आये है । आग उन्हें जला नहीं सकती, लोहा उन्हे काट नहीं सकता । आनन्द के आँसू उनकी आंखों से सदा गिरते रहते है । उनकी उपस्थिति मात्र से ही सदा एक नवीन जीवन प्राप्त होता है।"

पूर्व पश्चिम को अपने ज्ञानालोक से विजय करने के पश्चात् जब स्वामी स्वदेश लौटे तो कोटि कोटि कण्ठों ने उनका जय जयकार किया. कोटि कोटि नेत्र उनका दर्शन कर धन्य हो गये तथा उस ज्ञानसूर्य के दर्शन से करोड़ों का हृदयान्धकार दूर हो गया ।

मथुरा नगरी में जब श्री शिवगुणाचार्य ने स्वामी जी को एक स्वतन्त्र संस्था बनाने की सम्मतियां दी तो वह उदार हृदय महापुरुष बोले, 'भारत की सब सभा समितियां राम की है । राम उनमें काम करेगा । सब भारतवासी मेरे भाई हैं । जाओ उन्हे कह दो राम उनका है । राम, सबको छाती से लगाता है, मैं सब पर प्रेम की वर्षा करूंगा । सारे जगत को आनन्द की धारा में नहला दूंगा । यदि कोई विरोध प्रकट करेगा तो उसका स्वागत करूंगा । प्रत्येक शक्ति मेरी है, प्रत्येक संस्था मेरी है।"

मुक्त गगन में विहार करने वाले उन परमहंस की वाणी में हमें मानवता के जागरण का एक महान युक्ति मन्त्र मिला । राम सबसे ऊंचे पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर कहता है—"निर्बलता और दरिद्रता की शिकायत करने वाले लोगों, जागो । सचमुच तुम शक्तिमान प्रभु हो । स्वयं राम हो । अपनी कल्पनाओं में स्वयं मत जकड़े जाओ । उठो और जागृत होवो । अपनी निन्द्रा और संसार के सभी दुःस्वप्नों को झाड़ कर परे फेंक दो । निज स्वरूप पहचानों । यह सब दुःख दारिद्रय अपने आप लोप हो जायेगा । सारे सुखों की खान और सम्पूर्ण आनन्द की अन्तरात्मा तुम ही हो ।

स्वामी जी आत्म-गौरव के मूर्तिमान अवतार थे । वे कहा करते थे "ऐ दुनिया के बादशाहों और सातों आसमानों के तारों । मैं तुम सब पर राज्य करता हूँ । मेरा राज्य तुम सबसे बड़ा है ।"

स्वामी जी पर सदा आनन्द की मस्ती छायी रहती थी । उनकी मस्ती के फव्वारे सारे विश्व को पावन करने वाले थे । उनकी पवित्र मुस्कान बड़ी मोहक थी । वे देहानुभूति से राष्ट्रानुभूति तथा राष्ट्रानुभूति से विश्वानुभूति तक

विकसित हो चुके थे। वे ब्रह्म लीला के साझीदार व स्वयं ब्रह्म रुप हो चुके थे। सन् १६०६ की दीपमालिका उनके जीवन की ३३वीं दीपावली थी। उस दिन मस्ती का रंग कुछ निराला था। ओम् ओम् की पवित्र प्रणव ध्वनि करते हुए वे भागीरथी में स्नान करने के लिये उतरे। और ओंकार गाते हुये गगामैया की पावन गोदी में अनन्त जलसमाधि ले ली। अपनी महासमाधि के कुछ क्षण पूर्व ही स्वामी जी ने अपनी पावन लेखनी से मृत्यु को जो एक चुनौती दी थी वह उनके शश्वत जीवन की परिचायक है–"ओ मृत्यु, भले ही उड़ा दे इस शरीर को, मेरे और शरीर ही कम नहीं। मैं सूर्य की सुनहली किरणों और चन्द्र के रजत धागों को धारण कर प्रसन्नता से जीवित रहूँगा। मैं पर्वतीय गुफाओं और स्रोतों में स्वछन्द गीत गाता फिरुगा। मैं समीर की मस्ती हूँ और निरवधि वायु हूं। यह मेरे शरीर, परिवर्तन के घूमने-फिरने वाले रूप है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा। मुर्झाते पौधों को ताजा किया। फूलों को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, द्वारों को खटखटाया। स्रोतों को जगाया। किसी का आंसू पोंछा, किसी का घून्घट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझ को छेड़। वह गया। व गया॥ वह गया॥। न कुछ साथ रखा न किसी के हाथ आया।"

दीपावली के पवित्र पर्व पर ही यह पावन ज्योति इस पुण्य भूमि पर अवतरित हुई फिर पूरे २४ वष पश्चात् दीपमालिका के दीपों के प्रकाश में ही यह ज्योति परमज्योति से मिलने के लिए परम व्याकुल हो उठी, और पूरे ३३ वर्ष इस मृत्युलोक में अपना वैभव देकर दीप मालिका के ही ज्योति पर्व पर यह अमर ज्योति ब्रह्म ज्योति में विलीन हो गई।

उसी ज्योतिस्मान देवदूत को अनन्त दीपावलियों की आलोक मुखर निरांजना सादर समर्पित हो।

★★

धर्म और नीति

एक शब्द में वेदान्त का आदर्श है–मनुष्य के सच्चे स्वरूप को जानना। और वेदांत का यही सन्देश है कि यदि तुम व्यक्त ईश्वररूप अपने भाई की उपासना नहीं कर सकते, तो तुम उस ईश्वर की कैसे उपासना करोगे जो अव्यक्त है?

—स्वामी विवेकानन्द

The Relevance Of Swami Rama Tirtha's Message Today

By

(DR. HIRA LALL CHOPRA, M.A., D.Litt. Calcutta University)

The universalism of Swami Rama Tirtha is admitted on all hands. He envisaged that every soul that has been embodied in any form, has the potentiality to realize its true Self. It has been commissioned to do its wordly mundane duties as well as to transcend them for the higher realization of God in self; but a stage was imperative when the personal duties imposed on an individual either by the society or by the organised faith one is adherent of, were to be discarded in the larger interests of a larger number of individuals, societies or the countries and one was to identify oneself with the entire universe to be able to say VASUDHAIVA KUTUMBAKAM (the entire creation is my family). Rama was an individual. He performed his wordly duties and undertook his social obligations so far as it was practicable and when they were not impediments in the way of his realization.

The Vedanta, as propounded by Shankar appealed to him the most. Swami Vivekananda, and as a matter of fact, Sri Ramakrishna and all his disciple Swamis, till the last, performed all religious ceremonies and in spite of their belief in non-dualistic Vedanta, had firm conviction far ceremonialism also, whereas Swami Rama Tirtha on the contrary, after taking sanyasa, absorbed himself completely in the contemplation of the highest Truth throwing all ritualism to the winds. He believed in the inherent divinity of the human soul and Brahman seated in the human heart. Every human action loads us towards divine orientation. Purity is the main road to divine knowledge. The attitude of clinging to worldly passions, attractions and gratifications is the greatest impediment and the root-cause of all ills. The world is phenomenal and its fears and lusts are to be conquered. Every individual is the store-house of spiritual energy and the acquisition of divine strength through the purity of heart, is the

basis of a transformed life. It was therefore that he called the Supreme Being as RAMA-one with the Reality. This magnified odjectivism of Rama, has offended the Sikh susceptibilities of his biographer Puran Singh, who, in later life, had changed over to orthodox Sikhism in India from his non-dualistic monism experienced by him in the uplifting companionship of Rama in Japan. What a fall indeed : God-consciousness is *vairagya*. The religious life is meant only for those strong willed people, who can neautralise the attractions of the flesh. Supreme spirit manifests with the renunciation of sensuous pleasures. All energy must be conserved for the attainment of liberation.

Today when we look around ourselves, we find that the people wielding power in social, political educational and spiritual circles are so fatuated and mad for the acquisition of name and worldly pleasures that *vairagya* seems to have become extinct from the order of things and 'SERVICE BEFORE SELF' a slogan merely to be repeatead orally rather than to be practised. The individual life is corrupt to the very core and there is hardly any chance of its redemption. PURIFY YOURSELF is the watch-word of Rama Tirtha as this is the sacred and eternal characteristic of human nature which is not liable to be affected by any climatic or environmental pollution. It is eternally pure. The dust which has settled on it is required to be scrubbed off with *Karma yoga* and to free it of wayorderness by *Bhakti yoga* and to realize it as the Supeme Being by *Gyana yoga*.

The Society

Swami Ram Tirtha's soul was ever burning for a constant consciousness. Himalayas and the solitude available there, were his first love. He was in romantic love with his seclusion. From Ravi to Ganga, he always enjoyed the solitary companionship of nature and while relinquishing his mathematics, his book and Lahore, he was not at all sorry for that. He longed for vaster spheres to be comprehended by his all-absorbing Infinite Self. The civilization around him smacked of affection, artificiality and insincerity. Conventionalism, pleasing the public and winning esteem of a large number of peopie and too much reliance on apparent names and forms are the three great defects of the so-called modern civilization. Quest for money and and craze for possessions is another weakness. We find everybody who counts today, to be suffering from this malady. People are rather 'possessed' of their possessions. The craze for acquisition of worldly commodities is a frantic manifestation of 'prosaic embarassment and

tensions. ' In Rama Tirtha's view ' improper property keeps you but sad who is going to tell this and to whom ? Everyone today suffers from this ailment. Jealousy and fear-complex is yet another weakness of civilization and all nations suffer from it. Baneful ways and vain habits must be renounced. The idea of adding number to your fold, must be discarded. The scientific and material progress reqire a spiritual orientation so as to be harnessed for the benefit of man not for his detriment. Let all share equally the scientific achivements let there be no fear-psychosis felt by one on the achievements of the other. Fear, ignorance, untruth, slavery are the weaknesses which have to be overcome.

★

Four Things Which Bring Much Peace

'A Preaching From The Bible'

As no one can escape the sight or the justice of God so we should, in the first place, keep a continual watch over ourselves; secondly, we should never allow our selves anything that may displease God; thirdly, we should walk always in His presence and do all things with an intention of pleasing Him, follow on all occasions the motions of his grace, never resist His Holy will, nor defer its accomplishment for a moment, so that there may be no interval between our knowing, willing, and performing what He requires of us. Nothing is so agreeable to God as to confide in Him, to trust in all things to Him, to abandon ourselves entirly to Him, and to depend completely upon Him. Happy the soul which, receving all from His hands, resigns itself in all things to His Holy will, wills only what He wills and wills all that happens to it, because He so ordains it.

★ आश्रम समाचार ★

एक जून से लेकर १० जून तक पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज ने रामतीर्थ आश्रम राजपुर में ही निवास किया इस निवास कार्य में महाराज श्री आश्रम की आय व्यय विवरण का निरीक्षण करते रहे और आगत भक्त जनों की मानसिक समस्याएं सुलझाते रहे। ११ जून की सायंकाल मसूरी एक्सप्रेस से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया वहां दिल्ली शाखा की प्रधान माता मेला देवी जी मलहोत्रा के सहयोग से जो मिशन की नई शाखा शकूर बस्ती रानी-बाग में स्थापित हुई हैं उस पर एक सत्संग भवन बनकर तैयार हो गया हैं। १२ जून को बड़ी धूमधाम से उस सत्संग भवन का उद्‌घाटन महाराज श्री ने किया इस शुभवसर पर महा मण्डलेश्वर श्री स्वामी अमर मुनि जी, कु० उमा भारती आदि ने भी अपनी शुभकामनाएं प्रकट की। १३ जून को भी दिल्ली में ही निवास करके १४ को रेगिस्तान के पेरिस जयपुर मे महाराज श्री का पदार्पण हुआ। रामतीर्थ आश्रम राजपुर में स्वर्गीय श्री दौलत राम जी नैयर बम्बई वालों के सहयोग से एक भगवान शंकर के मन्दिर का निर्माण पूरा होने वाला है। भगवान शंकर के परिवार को लाने के लिये महाराज श्री ने जयपुर गमन किया था। साथ में प्रेम भण्डारी थे। इस प्रकार संगमरमर तथा मूर्तियों को लेकर महाराज श्री १७ जून को आश्रम में पधारे एक दिन आश्रम में निवास करके १९ जून को महामन्त्री स्वामी हंसप्रकाश की महाराज को साथ लेकर मसूरी पहुंचे। मसूरी में रामतीर्थ आश्रम की कार्यकारिणी की सदस्या श्रीमती पद्मा जौहर (प्रो० सवाय होटल मसूरी) जो लक्ष्मी नारायण मन्दिर की प्रधान भी है। इसका वार्षिकोत्सव १९ जुन को होता है। इस शुभावसर पर महाराजश्री ने रामप्रेमियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भौतिकवाद सुख सुविधा तो प्रदान कर सकता है, जीवन को विलासितामय बना सकता है किन्तु जीवन में शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। मानसिक शान्ति के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है। आध्यत्मिक वाद ही जीवन को सही दिशा प्रदान कर सकता है। इस शुभावसर पर स्वामी हंसप्रकाश जी ने कहा कि रजो गण को सत्व गुण से मिटाना है। लेकिन सत्वगुण को भी जीवन से हटाना जरुरी है। गुणातीत होने के लिये सत्वगुण के चक्कर से भी बाहर जाना जरुरी है वरना साधक को अपनी साधना के प्रति राग हो जाता है। राग अपने प्रतिपक्षी को जन्म देता है। परिणाम स्वरूप सूक्ष्म अहंकार की उत्पत्ति होती है जो साधक को पथ भ्रष्ट कर देता है। इस अवसर पर महात्मा योगेशजी ने स्वामी रामतीर्थ जी महाराज की निर्भीकता के विषय में तीन संस्मरण सुनाये। २० जून की प्रातः महाराजश्री वापस आश्रम पर लोट आये। २१ जून को देहरादून के करनपुर मोहल्ले में स्थित स्वर्गीय मिस्त्री तुगंल सिंह जी के घर पधारे। ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज के अन्नय तथा पुराने सेवकों में से एक मूक सेवक मिस्त्री तुगंलसिंह जी थे। ८ जून की रात्री को उनका स्वर्गवास

हो गया। उनको गले में कैंसर की शिकायत थी। इस अवसर पर स्वामी हंस प्रकाश जी ने उनके दिव्य गुणों की चर्चा की जिनसे व्यक्ति महान् बनता है। वे ऐसे आश्रम के सेवक थे। जो सेवा के बदले में सिवाये महाराजश्री की कृपा के और कुछ भी नहीं चाहते थे। इस अवसर पर महाराजश्री ने अपने प्रवचनों में कहा कि मृत्यु क्या चीज है? जड़ और चेतन का संयोग ही जीवन है और उन दोनों का अलग अलग हो जाना मृत्यु है। प्रारब्ध की समाप्ति पर ही यह दोनों अलग-अलग होते है ऐसा कहकर शोकाकुल परिवार को धैर्य बधाया और विवेक से काम लेने की प्रेरणा महाराज ने दी। २३ ता० की सायंकाल को देहरादून की श्रीमती काकीबाई ने अपने सुपुत्र प्रेम के शुभ विवाह के उपलक्ष्य में आश्रम के सत्संग भवन में सत्संग का आयोजन किया था। इस अवसर पर महाराजश्री ने विवाह का प्रयोजन बताया। स्वामी हंसप्रकाश जी ने दो प्रकार के धर्मों का निरुपण किया। प्रवृत्त्यात्मक धर्म और निवृत्त्यात्मक धर्म। दोनों ही समान हैं। कोई छोटा नहीं कोई बड़ा नहीं। अपने अपने धर्म में स्थित व्यक्ति अपने कर्तव्य को करता हुआ ही लक्ष्य तक पहुंच सकता है। २३ की रात्रि को महाराजश्री ने डिलक्स बस से दिल्ली को प्रस्थान किया वहां कीर्तिनगर में स्थित सनातन धर्म सभा के मन्दिर का वार्षिकोत्सव महाराजश्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। २४, २५, २६ तीन दिन महाराजश्री ने दिल्ली में ही निवास किया। २७ जून को आश्रम में रामचरित मानस का पाठ रखा गया, कुवेत निवासी श्रीमति विशेषशरण ने अपने पति स्वर्गीय श्री कृपाराम ओली की पुण्यस्मृति में कमरा निर्माण करवा कर उद्घाटन एवं भंडारा कराया।

१ जुलाई को आश्रम में गुरुपूजा महोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। प्रातःकाल ७ बजे से ही शहर से रामप्रेमियों का आना प्रारम्भ हो गया था। २५ जून से इधर मानसून के आ जाने से वर्षा प्रारम्भ हो गई है, चारों तरफ आश्रम में बादल मंडराते रहते हैं। प्रकृति ने हरी-धानी साड़ी पहनकर अपना शृंगार कर रखा है। वातावरण शान्त और इतना पवित्र है कि दीर्घकाल तक आश्रम में प्रवास करने वाले सेवकों का भजन स्वतः ही हो रहा है। वाराणसी के बाबा विश्वनाथ यति जी महाराज की बड़ी कृपा है कि वे चातुर्मास तक आश्रम में ही निवास करेंगे। परमाध्यक्ष जी महाराज के सदगुरुदेव महन्त श्री राम प्रकाश जी महाराज ने २० दिन आश्रम में निवास किया वे २७ जून को हरिद्वार चले गये।

गुरु पूजा के निमित्त अलीगढ़ से श्रीमती विमला बजाज, श्रीमती निर्मल अरनेजा आदि रामप्रेमी पधारे। १६ मई से ११ जून तक बाल सरस्वती कु० उमा भारती ने आश्रम में ही निवास किया। २ जुलाई को परमाध्यक्ष जी ने दिल्ली जाकर स्वर्गीय लाला भगवानदास जी के छोटे पुत्र विरेन्द्र को शुभ विवाह के उपलक्ष्य में आशीर्वाद प्रदान किया। ३ जुलाई को परमाध्यक्ष जी महाराज की अध्यक्षता में दिल्ली शाखा में गुरु पूजा महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। वे ७ जुलाई तक दिल्ली में ही निवास करेंगे। जुलाई के द्वितीय सप्ताह में महाराजश्री सोलन में विश्राम करेंगे।

—सह सम्पादक

दूरभाष-८४२२१ राजपुर, ४२९७ देहरादून, तार का पता-(वेदान्त) देहरादून, रजि० नं. डी. एल. १५

—सूचना—

१-मासिक पत्रिका 'राम सन्देश' न मिलने पर अपने समीपस्थ डाकखाने (पत्रालय) से पता करने के पश्चात् हमें सूचित करें। क्योंकि कभी कभी किसी कारणवश "रामसन्देश" १५ ता० तक निकलता है । इसलिए शिकायत पत्र अपनी अपनी ग्राहक संख्या सहित दिनांक २० के बाद प्रेषित करने का कष्ट करे।

२- कृपया आप १९७७ का १० रूपये चन्दा शीघ्र भेजने की कृपा करें। यदि आपने १९७६ का शुल्क प्रेषित नहीं किया, तो वह भी साथ ही भेज दें ।

३— आप आश्रम में किसी भी प्रकार का धन भेजते समय यह लिखना न भूलें कि यह धन किस निमित्त भेजा जा रहा है ।

४-यह प्रार्थना है कि जो पाठक इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं वे अपना सदस्यता शुल्क सम्पादक के नाम प्रेषित करें। सदस्यों को आजीवन पुनः बिना किसी शुल्क के यह पत्रिका प्रेषित की जायेगी।

५- राम सन्देश आपकी अपनी पत्रिका है । इसके ग्राहक बढ़ायें और शहनशाह राम, स्वामी हरिॐ जी महाराज तथा वेदांत के विचारों को जन-साधारण तक पहुंचाने में हमारा सहयोग दें।

धन्यवाद — सह-सम्पादक

स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून (उ०प्र०) के लिए प्रकाशक स्वामी गोविन्द प्रकाश द्वारा न्यू आईडियल प्रिंटिंग हाऊस, ४ बी, नेशविला रोड देहरादून में, मुद्रित ।

राम-सन्देश

अगस्त १९७७

एक प्रति
भारत में ८५ पैसे, विदेश में १ रु०

वार्षिक भेंट
भारत में १० रु०, विदेश में १२ रु०

आजीवन सदस्यता शुल्क :
भारत में—१००/-, विदेश में—५००/-

—संस्थापक—
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज

—व्यवस्थापक—
आचार्य स्वामी गोविन्दप्रकाश जी महाराज

संकेतिका

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)

सह सम्पादक—
काका हरिॐ "निर्द्वन्द्व"

★ ॐ ★

'राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'

—स्वामी राम

वेदान्त, अध्यात्म, संस्कृति, धर्म एवं भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा
स्वामी राम के आदर्शों का उपस्थापक एकमात्र लोकप्रिय मासिक—

राम-सन्देश

बेदोपनिषदां तत्त्वम् सत्यं नित्यं सनातनम्।
तत्सर्वं "रामसन्देशे" पत्रेऽस्मिन्नवलोक्यताम्॥

वर्ष २६ | अंक ८

राजपुर-देहरादून—अगस्त १९७७

वार्षिक शुल्क : १० रु०, | एक प्रति-८५ पै०,

माया-मोह

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटं माया।
वाक्य-ज्ञान अत्यन्त निपुन भव-पार न पावे कोई।
निसि गृह-मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त न होई।
जैसे कोई इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावे।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावे।
षट्रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै।
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु बिषय-आस मन माहीं।
'तुलसिदास' तब लगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुं सुख नाहीं।

—विनयपत्रिका

गतांक से आगे:—

व्यावहारिक वेदान्त

उन्नति का मार्ग

—स्वामी राम

चीन में एक लड़का था। उसके माँ-बाप अत्यन्त दरिद्र थे। वह यहां तक दरिद्र था कि पढ़ने के लिये उसे तेल तक नहीं मिलता था: किन्तु उसको पढ़ने का शौक था। वह बहुत से जुगुनुओं को एकत्र करके एक कपड़े में बाँधता था और जब वे चमकते थे, उनके प्रकाश से पढ़ लेता था। लोगों ने उससे कहा कि तुम यह क्या भद्दी चेष्टा करते हो, ऐसा परिश्रम किसलिये करते हो, क्या बादशाह के वजीर तुम्हीं होगे? अहाहा! उसने क्या उत्तर दिया, जिसको सुनकर सबका चित्त प्रसन्न हो गया। कहता है, मेरे हृदय में उमंगे उठती है, जिससे आशा बंधती है कि मैं वजीर बनूंगा। अन्त में वह लड़का चीन का वजीर हो ही गया।

प्रायः लोग कहते हैं कि हम अमुक काम क्योंकर करें? अरे भाई, आत्महत्या या ईश्वर-हत्या क्यो कर रहा है। तू शरीर नहीं है, तू स्वयं ही अनन्त है फिर किस प्रकार क्या पूछता है। तुम को क्या ज्ञात नहीं कि जलस्थित-विद्या (Hydro Statics) का एक सिद्धांत है, जिससे समस्त सागर के पानी को एक जरा सा पानी रोक सकता है। इस प्रकार एक मनुष्य सारे संसार को रोक सकता है। यदि वह अपने भीतर के ईश्वरत्व पर खड़ा हो जाय। कारणों का कारण तो तू ही है फिर सामान या साधन क्या ढूंढ़ता है?

स्काटलैंड का एक बच्चा वहां के अनाथालय से भागकर लंदन चला आया। लंदन में संयोग से वह लार्ड मेयर के बाग में पहुंच गया और वहाँ खेलने लगा। संयोग से उधर से एक बिल्ली निकली। बच्चे ने उसकी दुम पकड़ ली और उससे बातें करने लगा। इतने में निकट से एक घंटे की ध्वनि सुनाई दी, जो लगातार बज रहा था। बस, अब वह बच्चा बिल्ली से बात करने लगा और कहने लगा—

(What does the mad bell say?
Ton! Ton !! Ton !!! Whittington, Whittington,
Lord Mayor of London!)

यह पगली घंटी क्या कहती है? टन! टन!! टन!!! ह्विट्टिङ्गटन ह्विट्टिङ्गटन, लार्ड मेयर आफ लंडन!

वह अपनी इसी बातचीत में था कि संयोग से लार्ड मेयर उधर से आ निकला। उसने सुना कि कोई व्यक्ति बात कर रहा है। वहाँ आकर यह हाल देखा। उसने लड़के से पूछा कि तू क्या कर रहा है। ? उसने उत्तर दिया, लार्ड मेयर आफ लंडन। लार्ड मेयर बहुत प्रसन्न हुये। उसको अपने यहां ले गये, और उसको शिक्षा के लिये स्कूल में भेजा। वहां उसने अत्यन्त परिश्रम के साथ पढ़ा और खूब विद्या प्राप्त की। धीरे धीरे वह एक दिन लॉर्ड मेयर आफ लंडन हो गया।

एक कवि था। अपनी विद्या में प्रवीण था। उसने बहुत से पद्य कहे और बादशाह के सम्मुख ले गया। बादशाह उनको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और खूब पारितोषिक दिया। बेगमों ने भी उसकी वाणी को पसंद किया, और जब बादशाह महल में आया, तो उनसे इच्छा प्रकट की कि कवि कहीं महल के निकट रखा जाय। दूसरे दिन बादशाह ने कवि से पूछा—"कहाँ रहते हो?" वह मतलब समझ गया, और बादशाह से बोला – "मैं तो अन्धा हूँ" यह सुनकर बादशाह ने कहा—जब यह अन्धा है, तो कोई हर्ज नहीं है इसको महल के निकट एक कमरे में ठहरा दिया जाय। निदान, ऐसा ही किया गया। अब वह वहां रहने लगा, और नौकरों चाकरों को दिक करने लगा। एक दिन लौंडी से कहा कि लोटा उठा दो, हम को आवश्यकता है। उसने कहा, यहां लोटा कहां है ? कहने लगा—उठा दो। उसने फिर वही उत्तर दिया। निदान, बहुत कहा-सुनी के बाद बोल उठा, अरी ! यह क्या पड़ा है, क्यों नहीं उठा देती ? बस, लौंडी दौड़ी हुई महलों में गई और बेगमात से कहा यह मुआ तो देखता है, अंधा नहीं है। यह मुआ हम सबको बराबर घूरता है। तत्काल बादशाह को खबर की गई। परिणाम यह हुआ कि दरबार से निकाला गया, और फिर वह सचमुच अन्धा भी हो गया।

आप कहते हैं, सामान नहीं है, कैसे काम करें ? यह सब संकल्प का खेल है। जब आपके भीतर निश्चय की शक्ति आ जायेगी, तो सब सामान आपके सामने आ जायेंगे। देवता (प्रकृति की शक्तियाँ) आपके लिए अपना स्वभाव बदल देंगे। ऊपर जो उदाहरण वर्णन किए गए हैं, उनसे स्पष्ट सिद्ध है कि अच्छे ख्याल वाले अच्छे होंगे, किन्तु बुरे मनोरथ मांगनेवाले बुरे होंगे। जैसा ख्याल करोगे, वैसे ही हो जाओगे।

गर दरे-दिल तो गुल गुजरद गुल बाशी;
वर बुलबुले - बेकरार बुलबुल बाशी।
सौदाये - बला रंजो-बला मी आरद;
अंदेशा-ए कुल पेशा कुनी कुल बाशी।

"यदि तेरे चित्त में पुष्प (प्यारे) का ख्याल होगा, तो पुष्प (प्यारा) हो जायगा, और यदि चञ्चल बुलबुल हो जायगा।" स्मरण रहे कि दुःखों का ख्याल करनेवाला दुःख और कष्ट अपने ऊपर ले आता है, और सबका शुभचिंतक स्वयं सब हो जाता है।

प्रत्येक प्रार्थना सुनी जाती है। जो प्रार्थना दिल से निकलती है, वही स्वीकृत होती है । इस का तात्पर्य है कि जैसा आपका संकल्प होगा, उसको आपके भीतर का सच्चा बल पूरा कर देगा । आपमें वह शक्ति विद्यमान है, जिससे आप देवताओं की बराबरी कर सकते हैं । देवता के अर्थ प्रकृति की शक्तियों के हैं। यदि आप वेद के अनुसार चलें, तो आप देवताओं तक पहुँच सकते हैं । आप अपने विश्वास और निश्चय के बल से प्रकृति की शक्तियों को खींचकर ला सकते हैं। और बराबरी कर सकते हैं। किन्तु आपने उन साधनों को भुला दिया है। जब तक उन साधनों को आचरण में लाते थे, तब तक उस प्रकार के विचार हृदय में संचित थे, उस समय वैसे ही परिणाम निकलते थे। किन्तु जब से उन उपायों को छोड़ा, और खराब विचार ने दिल में जगह पकड़ी, रंगत भी बदल गयी। जब हिन्दुओं में यह विचार उत्पन्न हुआ:—

"हमको नौकर राखो जी, । हमको नौकर राखो जी
मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा;
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा।"

और हिन्दुओं में एक गुण विशेष यह है कि वे सदैव सच्चे होते हैं। अतः उनकी वह स्वाभाविक सच्चाई उक्त विचार पर लगाई गई, और उनका क्योंकि यह हार्दिक विचार था, इसलिए उनकी मनोकामना पूरी हुई। और वे इस तरह से विदेशियों के गुलाम (दास) हो गये। स्पष्ट है कि जैसा ख्याल करोगे, वैसा पाओगे । हमें अपने ख्यालों को सुधारना चाहिये। बुद्ध भगवन् ने भी यही सिखाया है। अतः न अपने सम्बन्ध में और न किसी अन्य के सम्बन्ध में अपने हृदय में मलिन विचारों को आने दो । भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर को देखो। मौहम्मद साहब के हृदय में यह बात समा गई थी, इस कारण उन्होंने सिखाया था कि (ला इलाह इल्लिल्ला) "नहीं है कुछ सिवाय परमेश्वर के।" हजरत ईसा मसीह की नस-नस में भी यही विचार दौड़ रहा था । अतः उन्होंने भी यही कहा कि "मैं और मेरा बाप (ईश्वर) एक ही हैं (I and father are one)।" अब उसको लोग समझें या न समझें; मगर असल बात यही है। जब हजरत मौहम्मद साहब के दिल में यकीन आ गया, तो उन्होंने कहा कि अगर सूर्य मेरी दाईं ओर और चांद मेरी बाईं ओर आकर धमकाने लगें कि पीछे हट जाओ, तब भी मैं पीछे न हटूंगा। एक आदमी जो जंगलों का रहने वाला था, उसके हृदय में इस विश्वास की आग भड़क उठी, और उसने अरब के मरुस्थल में इसके काले रेत के दानों को भड़काया। वे जर्रे बारूद के छर्रे बन गये, और यूरोप वा अफ्रीका के पश्चिमी सिरे से लेकर एशिया के पूर्वी सिरे तक एक शताब्दी के भीतर फैल गए । यह शक्ति है आत्मबल की, यह शक्ति है विश्वास की, यह शक्ति है निश्चय (यकीन) की। इस पर भी कहते हो कि सामान की आवश्यकता है? सामानों के सामान

आप स्वयं हो। इस विचार को ब्रह्मविद्या कहते हैं।

जिस प्रकार एक सुन्दर बालक चेचक के रोग से बिलकुल कुरूप हो जाता है, और उसकी जान पर बन आती है, और उसको कुछ लाभ गाय के थन के लिंफ (lymph) का टीका लगाने से होता है; इसी तरह हिन्दू जाति को अविद्या की चेचक निकली है, और वह कुरूप होती जाती है। उसका अन्त भी निकट जान पड़ता है; अतः उसको भी टीका लगाने की आवश्यकता है। इस टीके के लिए लिंफ कहां से आवेगा? यह भी गौ के थन से लिया जाएगा। गौ के अर्थ 'उपनिषद्' के हैं। और वह लिंफ गौ रूपी उपनिषद् से लिया जायगा। मतलब यह है कि ब्रह्मविद्या को उपनिषदों से सीखो, और उस पर आचरण करो, तो यह अविद्या की चेचक तत्काल अच्छी हो जायगी।

लोग कहते हैं कि इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि जो जाति एक बार उन्नति करके अवनति को प्राप्त हुई, फिर वह दुबारा उन्नति नहीं करती। यह ख्याल तुच्छ है। आपका इतिहास क्या है? वही एक हजार वर्ष का इतिहास और उस पर यह अभिमान। अरे भाई वह तो एक युग का भी पूर्ण इतिहास नहीं है। प्राकृतिक विकास का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, किसी न किसी रूप में वह विद्यमान रहती है। कहते हैं कि:—

'हर शाख रंग आमेजी दर फस्ले-खिजाँ ग्रंदास्ता।'

अर्थः - प्रत्येक शाख (टहनी) पतझड़ की ऋतु में फली-फूली है। कैसा आश्चर्य है!

फिर देखो, प्रकृति आपको बताती है कि तारे पूर्व से पश्चिम को जाते हैं, और फिर वहां से पूर्व को लौट आते हैं। यही दौर या चक्र है। इसी प्रकार सौभाग्य का तारा पूर्व से पश्चिम को गया, और फिर वहां से पूर्व को लौटा आ रहा है। इतिहास इसकी साक्षी देता है। देखो, एक युग था, जब भारतवर्ष का तारा अभ्युदय पर था, वहां से पश्चिम को चला, फारस में आया। उसके पश्चात् आस्ट्रेलिया आदि की बारी आयी। वहां से यूनान पहुंचा। यूनान को छोड़कर रोम गया। रोम के बाद स्पेन की बारी आई। फिर इंग्लैंड पर कृपादृष्टि हुई। वहां से अमेरिका गया। इस समय अमेरिका का पश्चिमी भाग कैलीफोर्निया अत्यन्त उन्नति पर है। वहां से जापान में आया। फिर अब कैसे कह सकते हैं कि भारतवर्ष वंचित रहेगा, इसकी बारी नहीं आयेगी? अवश्य आयेगी, अवश्य आयेगी। क्रमशः

ॐ ॐ ॐ

आपकी सारी चिन्ताएं किसी आंतरिक दुर्बलता के कारण हैं, उस दुर्बलता को दूर कर दो।

—स्वामी राम

नवजीवन पथ. १० फरवरी १९७५ से साभार :

क्या हम में सांस्कृतिक चेतना है

* नथुनी मिश्र आत्मानन्द *

हमारी भारतीय संस्कृति आत्मज्ञता की चिन्तन-भूमि है। यह बहिर्मुखी नहीं; अन्तर्मुखी है। इसमें जीवन भोग-प्रधान नहीं; योगात्मक, त्यागात्मक, स्वीकार किया है, हमारे उपनिषद् का वाक्य है—"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।"

भारतीय संस्कृति की यह विश्वास पूर्ण धारणा है कि असमर्यादित भोग से पुण्य-क्षय होता है और पाप को उभरने का अवसर मिलता है। भारतीय संस्कृति में सर्वदा सृजन का ही गीत गाया है प्रलय के पीछे भी सदा शिव की ही अभिव्यक्ति का निरुपण किया गया हैं। ज्ञान के आदि शास्त्र वेद का स्वर है—'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

संस्कृति और सभ्यता में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। सभ्यता शरीर है तो संस्कृति आत्मा सभ्यता आचार है तो संस्कृति विचार, आचार और विचार का सन्तुलनात्मक समन्वय, नीव में सर्वोदय का संरक्षण-हमारी भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है -"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः"। अतः सुख दुख, मान अपमान की जैसी अनुभूति हम स्वयं करते हैं, वैसी ही भावना सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिए रखनी चाहिए।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में बहुत सी अच्छी बातें होते हुए भी वह मूलतः अधिकार-प्रधान, भोग-प्रधान है, उसमें लोग प्रधानता देते हैं और दूसरों के सुख को गौण रखते हैं। इसलिए, उसका जोर शारीरिक सुख-भोग तथा उसके लिए अगणित साधन जुटाने की ओर है। भारतीय संस्कृति अनेक बुराइयों के होते हुए भी मुख्यतः धर्म-प्रधान, कर्त्तव्य-प्रधान, त्याग और तपस्या - प्रवृत्ति - मूलक है। विश्व-मानवता एवं विश्व-संस्कृति का निर्माण तभी सम्भव है जब मनुष्य शारीरिक सुख का साधन जुटाने में उस सीमा तक प्रयत्न न करे कि उस प्रयत्न में मानवता की प्राण ज्योति ही खो जाय।

भारतीय संस्कृति में अहिंसक जीवन-निर्माण की सम्भावना अधिक होने से वह विश्व - संस्कृति या विश्व मानवता की आधार शिला बन सकती है। सम्पूर्ण विश्व में मानव संस्कृति अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरी है

उसमें सभी देशों की संस्कृतियों का योग-दान है; किन्तु भारतीय संस्कृति ने उसे एक निर्दिष्ट दिशा एक विशिष्ट दृष्टि दी है—वह है सब मूल्यों के ऊपर साधुता, सदाचरण, त्याग और तपस्या के मूल्य को वरीयता देने की दृष्टि। अपने लिए सब जीते हैं; किन्तु सबके लिये जीने की दृष्टि एक मात्र भारतीय संस्कृति की ही देन है। यह मानव में उसकी सूक्ष्म प्रेरणा प्रेम को, अहिंसा को जगाती है। 'कामायनी' महाकाव्य में श्रद्धा मनु से कहती है—

औरों को जीने दो मनु,
जियो और सुख पावो।
अपने सुख को विस्तृत करके,
जग को सुखी बनाओ॥

यूरोपीय संस्कृति दैहिक प्रवृत्ति-प्रधान शारीरिक सुख-प्रदान संस्कृति है। वह तृष्णाओं को बढ़ाने और उनकी पूर्ति करने का मार्ग प्रशस्त करती है। फिर एक तृष्णा अनेक तृष्णाओं को जन्म देती है और इस प्रकार अगणित तृष्णाएं हमारा जीवन-रस चूसती रहती हैं। आज की संस्कृति में जड़ प्रकृति के नियमों की खोज होती और मनुष्य की बौद्धिक शक्ति वस्तुएं उत्पन्न करने के साधनों और संहारक शस्त्रास्त्रों की खोज और निर्माण में प्रयुक्त होती है। इसके विपरीत हमारी भारतीय संस्कृति की प्रवृत्ति प्रधानतः आध्यात्मिक नियमों के अनुसन्धान की ओर उन्मुख रही है। संस्कृत का एक नीति श्लोक है—

"भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥"

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि-
संयाति नवानि देही॥"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का कथन है—"भारतीय संस्कृति में सम्मिश्रण की परम्परा भी स्वभावतः स्वदेशी ढंग की ही है जिसमें संस्कृति का उचित स्थान सुनिश्चित है, वह उस अमेरिकन ढंग की नहीं है जिसमें एक प्रधान और प्रभावशाली संस्कृति शेष संस्कृतियों को अपने में आत्मसात् कर लेती है और जिसका लक्ष्य उनमें एकरूपता स्थापित करने की ओर न होकर कृत्रिम और बलात् एकता स्थापित करने की ओर होता है।

एक समय एक जापानी सज्जन के प्रश्न के उत्तर में गांधी जी ने कहा था "यदि आप भारत के अन्तरंग को देखना चाहते हैं तो मैं आपसे कहूंगा कि आप बड़े शहरों पर नजर न डालें। यहां के बड़े शहर तो पश्चिम की नकल है, गांवों में सही भारतीय संस्कृति आच्छादित है। नगर तो विदेशियों के बनाए हुये हैं।"

जिस तरह गंगा नदी में कई सहायक नदियां

आकर मिलती हैं। उसी तरह भारत की संस्कृति---गंगा में अनेक संस्कृति रूपी सहायक नदियां आकर मिलती हैं। इन सबका सार्वभौम सन्देश हमारे लिये यही हो सकता है कि हम दुनिया को अपनाएं और किसी को भी अपना शत्रु न समझे।

पश्चिमी संस्कृति निरंकुश है, भारतीय संस्कृति संयम-प्रधान है। इनका मतलब यह कदापि नहीं है कि हम एकान्तिक हो जायें या कोई दीवार अपने चतुर्दिक् खड़ी कर लें। किन्तु इतना तो जोरदार शब्दों में कहा जा सकता है कि अपनी संस्कृति के सम्यक्, समादर और अंगीकरण के बाद हीं दूसरी संस्कृतियों का समादर करना चाहिये। हम लोग अपनी संस्कृति को प्रायः भूल ही गए हैं। हमारा प्रथम उद्देश्य निश्चित रूप से अपनी प्राचीनता को पुनर्जीवित करना है। हिन्दू संस्कृति में बौद्ध संस्कृति का अवश्य समावेश होता है क्योंकि बुद्ध स्वयं एक भारतीय थे। वे केवल भारतीय ही नहीं थे बल्कि हिन्दुओं में एक हिन्दू भी थे। प्राचीन संस्कृति में जो कुछ उदात्त और स्थायी है, उसी को पुनर्जीवित करना चाहते थे। भगवान् बुद्ध ने मैत्री, करुणा और कल्याण इस त्रिपुटी का स्वयं अनुभव किया।

महात्मा गांधी आचार को प्रधानता देते थे। जिस विचार को आचार में नहीं ला सकते, उसे वे बहुत गौण समझते थे। वे सही अर्थ में कर्मयोगी थे। सादा जीवन और उच्च विचार हमारे भारतीय ऋषियों का आदर्श रहा है। मनुस्मृति का श्लोक

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां
सर्व मानवाः।।"

जो भारत एक समय संसार का जगद्गुरु बनकर आध्यात्मिक मार्गदर्शन देता था, वह आज पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में अपनी पुरातन गरिमा को भूलकर नकलची बनता जा रहा है। भारत के मेधावी छात्र आज अमेरिका, यूरोप के में उच्च-शिक्षा के लिये भी जाते हैं और वहां के रहन-सहन, आचार-विचार में अपनी भारतीयता को भूल जाते हैं। एक अंग्रेज विचारक ने भारत के लोगों की हंसी उड़ाते हुये यहां तक कह डाला था—"भारत के लोग स्याही सोख्ता का काम करते हैं। जिस प्रकार स्याही सोख्ता मूल लिखावट को छोड़ कर ऊपर की स्याही सोख लेता है उसी प्रकार भारत के लोग पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति की वास्तविकता से दूर केवल ऊपरी ठाठ-बाट को ग्रहण कर लेते हैं।" स्व० प्रो० मनोरंजन प्रसाद जी ने अपनी एक 'पैरोडी' (हास्य-पूर्ण कविता) में लिखा है—

"इस देश को है दीन बन्धो!
आप अब अपनाइये।
भगवान भारत वर्ष को
फिर सभ्य भूमि बनाइये।
अब वह घड़ी आवे प्रभु,
सबको घड़ी हो चेन हो।
कर में लचीला केन हो.

पाकिट में फाउंटेन पेन ही ।।
गौरांगिनी भाषा रहे,
इंगलैंड के स्कालर रहें ।।
हो सूट में शोभित बदन,
टाई रहे कालर रहें ।
होंवे पदद्वय बूट धर,
चश्मा सुशोभित नैन हों ।
भगवान् भारतवर्ष के सब
लोग जेंटल मैन हों ।"

पश्चिमी देश भूषा और रहन-सहन तथा आचार विचार को बिना समझे नकल करना हमारे लिए उपहासास्पद होगा। भारतीय संस्कृति ही हमारा जीवन दीप है। सरल जीवन और उच्च विचार के आदर्श को हमें यथार्थ में परिणत करना चाहिए। उच्च विचार को खो बैठने का खतरा कदापि मोल नहीं लेना चाहिये। अन्य संस्कृतियों में जो उत्तम बातें हों, उन्हें अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये। किन्तु अपनी भारतीय संस्कृति को सदा हृदय से अपनाये रहना चाहिये। श्रीमद्भगवद्-गीता की पंक्ति है—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः, पर धर्मो भयावहः"

एक कवि ने ठीक ही कहा है -

"जिसको न निज गौरव तथा
निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं है पशु निरा है,
और मृतक समान है ।।"

भूतपूर्व राष्ट्र-कवि स्वर्गीय श्री मैथिली शरण गुप्त जी ने भारत-भारती में लिखा है —

"आये नहीं थे स्वप्न में भी
जो किसी के ध्यान में ।
वे प्रश्न पहले हल हुये थे
एक हिन्दुस्तान में ।
सिद्धान्त मानव जाति के
जो विश्व में वितरित हुए ।
बस, भारतीय तपोवनों में
वे प्रथम निश्चित हुये ।।
हम बाह्य उन्नति पर कभी
मरते न थे संसार में ।
बस मग्न थे अन्तर्जगत
के अमृत-पारावार में ।।
विख्यात जीवन व्रत हमारा
लोक-हित एकान्त था ।
'आत्मा अमर है, देश नश्वर'
यह अटल सिद्धान्त था ।।"

अतः हमें अपनी प्राचीन गौरव गरिमा को कदापि भूलना नहीं चाहिये। हमें सतत सतर्क रहना चाहिये कि आधुनिकता की नकल करने में कहीं वास्तविकता से दूर न चले जायें। हमारी नस-नस में राष्ट्रीय चेतना सांस्कृतिक सतर्कता बनी रहनी चाहिये। हमारे विष्णु पुराण में लिखा है—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि;
धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूताः ;
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।" ★

कण्वाश्रम क्या और कहां

स्वामी ब्रह्मानन्द,
M.A.L.L.B., L.S.G.D., ऋषिकेश

परा तथा इन्दिरा के साथ लेखक ने, सम्भवत; सन् १९७१, वीणा के निर्देशन में वर्तमान मालिनी (मालन) नदी के वामतट पर नव निर्मित कण्वाश्रम को देखा। प्रातःकाल ही यशोशरपुर से नहर के किनारे किनारे पैदल चलकर ९ बजे वहां पहुंच गये थे। उक्त आश्रम का नाम विश्रुत है, जिसके मूल में विपुल इतिहास प्रच्छन्न है। आश्रमप्रान्त वास्तव में एकान्त, शान्त, मनोरम तथा आकर्षक है। इसकी शोभा एवं रम्यता सहृदयों के लिये परम दर्शनीय अथ च आह्लादकारिणी है। प्राचीनता का द्योतक होता हुआ भी वर्तमान कण्वाश्रम आधुनिकता से अधिक प्रवञ्चित नहीं। पहुंचने के लिये केवल वर्षाकाल को छोड़कर मोटरमार्ग आश्रम प्राँगण तक निर्मित है।

कण्वाश्रम की भौगोलिक स्थिति के संबन्ध में मतैक्य नहीं विवाद चला, और क्या हुआ कह नहीं सकते क्योंकि कोई इसकी स्थिति कर्णप्रयाग के समीप मानते हैं, और कोई बिजनौर में, किन्तु स्वर्गीय श्री जगन्मोहनसिंह नेगी ने स्थान की भव्यता तथा सुन्दरता पहिचान कर अपने मन्त्रित्व काल में वर्तमान कण्वाश्रम का निर्माण किया तथा यथासम्भव आधुनिक सुविधायुक्त बना दिया। स्व० डाक्टर के०एम० मुन्शी ने अपने प्रबन्धों में इसका विशद वर्णन किया है।

किसी समय यह प्रदेश लोकोत्तर था जहां महाराज दुष्यन्त और ऋषिकन्या शकुन्तला का परस्पर आकर्षण एवं परिमाणतः गान्धर्व विवाह हुआ जिसके लिये महर्षि कण्व ने स्वीकृति दे दी थी— "तात काश्यपेनैवमभिनन्दितम्,— 'दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से ! सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाऽशोचनीया संवृत्ता।' इस कालिदास लिखित तथ्य से पुष्टि होती है।

शकुन्तला कौन थी, दुष्यन्त कौन था, सब महाभारत के सम्भवपर्व में अध्याय ६८ से ७४ तक ज्ञेय है। श्रीमद्भागत पुराण के नवम-अध्याय में २० पठनीय है। "विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया। वेदेतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते।' दुष्यन्त के कहने पर 'ओमित्युक्ते यथाधर्मसुपयेमे शकुन्तलाम्। गान्धर्व विधिना राजा देशकालविधानवित्।' महाभारत में दुष्यन्त का परिचय है : "पौरवाणां वंशकरो

दुष्यन्तो नाम वीर्यवान् ।" संक्षेप में कह सकते हैं कि विश्वामित्र-मेनका की पुत्री शकुन्तला थी। नवजात बालिका को त्यागकर मेनका इन्द्रलोक को लौट गई। वन के पक्षियों ने आसन्न प्रसूता तथा परित्यक्ता बच्ची की रक्षा की। पक्षियों का शकुन्त भी एक नाम है, सहसा उस ओर कण्वऋषि पहुँच गए। दयावश बालिका को अपने आश्रम में ले गये, उसका नामकरण शकुन्तला किया, पालन पोषण किया और वह प्रियंवदा तथा अनुसूया के साथ रहने लगी। सभी समान अवस्था तथा स्वभाव की थी किन्तु भाग्य भिन्न थे। उक्त आश्रम का कुलपति ही कण्व था। दुष्यन्त इन्द्रप्रस्थ का राजा था। मृगया करते हुये उधर आ पहुंचा। महाभारतादि में उक्त घटना का तथ्यात्मक कथन है किन्तु महा कवि कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में इसी विषय को संशुद्ध, रोचक तथा अमर कर दिया है।

कवि ने अपने नाटक का नाम अच्छी प्रकार सोच समझकर रखा किन्तु इसका स्पष्टीकरण प्रयत्नसाध्य तो है ही। अभिज्ञान का अर्थ है परिचायक चिह्न, शकुन्तला का कथन कर ही दिया है। इन दोनों शब्दों का समास होने पर अभिज्ञान-शाकुन्तलम् नाम हो गया, भ्रान्ति से भी अभिज्ञान शकुन्तला कहना अथवा लिखना उचित नहीं क्यों कि यह नाटक का बिशेषात्मक नाम है।

आश्रम से लौटने पर दुष्यन्त ने शकुन्तला को अपनी नामाङ्कित अंगूठी दे दी थी स्मारक के रूप में। इसी अंगूठी ने कण्वऋषि को निश्चिन्त किया, शकुन्तला को स्वप्नलोक में पहुंचाया, दुर्वासा को रुष्ट किया और महाराज दुष्यन्त को विस्मरण कराया। पतिगृह को जाने के लिए शकटतीर्थ में नौका द्वारा पार उतरते समय शकुन्तला की अंगुली से निकल कर अंगूठी नल में गिर गई जिसे मत्स्य ने तत्काल उदरसात् कर दिया। दैवात् विभिन्न मार्गों को पार करती हुई अन्ततः दुष्यन्त के पास पहुंचती है जिसको देखते ही वह विक्षुब्ध हो जाता है। न निद्रा है, न क्षुधा है, न प्रमोद है, न शान्ति, दुःख ही दुःख है, पश्चात्ताप और चिन्ता मात्र रह गये, शरीर कृश हो गया।

अन्ततोगत्वा दुष्यन्त का रथ हिमालय की ओर चल दिया और मरीचि ऋषि के आश्रम प्रांत में पहुंच गया। वहां एक शिशु को सिंहशावक के साथ खेलते हुए देखा, सिंह के दांत गिनते हुए देख कर महाराज दुष्यन्त को महान् आश्चर्य हुआ। बालक के प्रति आकर्षण होने लगा। जैसे ही बालक से उसके पिता के सम्बन्ध में जिज्ञासा हुई वैसे ही शकुन्तला वहां उपस्थित हो गई किन्तु उसने कोई उत्सुकता प्रकट नहीं की, उसके साथ छल किया गया, आश्वासन अलीक रहा, राजसभा में अनादर किया; राजा को यह जानकर अत्यन्त अन्तर्दाह हुआ। उसने अपने दोष के लिये क्षमायाचना की परिमाणतः शकुन्तला मान गई।

कथा को वास्तविकता से पूर्ण कल्पनात्मक

स्वरुप प्रदान करने के लिये कवि ने महान् प्रयास किया परिमाणतः विश्व साहित्य में अमरकृति हो गयी है। इस नाटक को अन्य भाषाओं के माध्यम से भी विश्व के विद्वानों ने पढ़ा, सुना और अपनी भाषाओं में अनुवाद किया। सार्वजनिक दृष्टि में रखते हुए जो कोई कवि, कलाकार, वैज्ञानिक, व्यवसायी कार्य करता है वह महान् माना जाता है, अमर हो जाता है। कालिदास की विशेषता इसी में है कि उसने मानवीय गुणों, भावों तथा कार्यो का सरल किन्तु सरस भाषा में प्रकाशन किया।

कवि कालिदास कहां का था, कब हुआ, कोई निश्चय नही किन्तु अपनी महान कृतियों द्वारा जीवित हैं। कालिदास के सम्बन्ध में सभी प्रकार की भव्याभव्य कथाओं का जाल प्रसृत है अतः तथ्यता से परिचय नहीं हो पाता है। संस्कृत के तीन कालिदास कवि हुए। भोजप्रबन्ध के सम्बन्धित कालिदास अभिज्ञानशाकुंतलम् का कालिदास। अस्तु, कालिदास का हिमालय के प्रति अत्यधिक आकर्षण था, उनकी प्रायः सभी कृतियों में हिमालय का वर्णन मिलता है। क्षिप्रा नदी से हिमालय की ओर, रामगिरी से हिमालय की ओर, हस्तिनापुर से हिमालय का वर्णन है।

हिमालय प्रदेश के प्रति कालिदास का अनन्य प्रेम और आकर्षण था। रघुवंश में हिमगिरी का वर्णन, कुमारसम्भव में हिमालय का चित्रण, मेघदूत में अलकापुरी का आकर्षण, विक्रमोर्वशीयम् में हिमप्रान्त का निर्देश, और अभिज्ञानशाकुन्तलम् तो सर्वोत्तम कृति है जिसका भाषान्तर सर्वत्रएव भाषाओं में प्राप्त है। संस्कृत वाङ्मय की पुष्कलता, ऋजुता तथा प्रवणता अन्यत्र दुर्लभ है। उपमा कालिदासस्य की उक्ति लोक प्रसिद्ध है। पद पद पर उपमा सुलभ है।

कालिदास के काव्य तथा नाटकों का आदर तो सब करते हैं किन्तु रम्य स्थली की वर्तमान दशा को देखकर कष्ट होता है क्योंकि उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। वर्तमान कण्वाश्रम का विकास अपेक्षित है। मालिनी के प्रसाद से भावर प्रदेश बहुत उर्वर है, फल, शाक, भाजियों की कमी नहीं किन्तु जल की प्रचुरता होने पर भी उसका उचित उपयोग नहीं होता है। सार्वजनिक कूल (नहर) का दुरुपयोग करते हैं परिणामतः भाबर में लोग अर्धविषाक्त जलपान करते हैं जिसे जानते हुए भी कोई अवरोध नहीं।

★ ★ ★

दिव्य वाणी

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ विचरता है। वही शान्ति को प्राप्त होता है।

—कृष्ण भगवान

दर्शनशास्त्र का स्वरूप

डा॰ अभेदानन्द
अध्यक्ष—दर्शनविभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मानव एक विवेकशील प्राणी है (Man is rational animal) वह प्रत्येक कार्य को बिचारपूर्वक करता है। मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि पशु की प्रवृत्ति अविवेकपूर्ण होती है, किन्तु मनुष्य की विवेकपूर्ण। यही कारण है कि यदि कोई मनुष्य अविवेकपूर्वक कार्य करता है, तो उसे केवल नाममात्र का मनुष्य कहा जाता है, वास्तव में नहीं। मनुष्य की इसी स्वाभाविक विचारशक्ति का नाम ही दर्शन है। "दृश्यतेऽनेन तद्दर्शनम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप देखा जाय, उसे दर्शन कहा जाता है। यह संसार क्या है? इसका कोई रचियता है या नहीं? आत्मा का स्वरूप क्या है? यह दृश्यमान स्थूल शरीर आदि से भिन्न है या अभिन्न? इत्यादि प्रश्नों का समाधान करना दर्शनशास्त्र का काम है। शास्त्र शब्द 'शासु अनुशिष्टौ' अथवा "संभु स्तुतौ" इस धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय करने से बनता है। शासन अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि के लिए किया जाता है, परन्तु शंसन अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग उस शास्त्र के लिए किया जाता है, जो वस्तु-तत्व का वर्णन करता हो। धर्मशास्त्र कर्तव्य-अकर्तव्य का वर्णन करने के कारण पुरुषतन्त्र है; परन्तु दर्शनशास्त्र वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करने के कारण वस्तुतन्त्र है। इस प्रकार यहां वस्तु-तत्व के प्रतिपादक शास्त्र को दर्शन कहा जाता है। इसके विपरीत पाश्चात्य दर्शन का वाचक जो 'फिलासफी' शब्द है उसका अर्थ है ज्ञान-प्रेम। क्योंकि यह शब्द 'फिलास' (Philos), जिसका अर्थ है प्रेम या अनुराग, तथा 'सोफिया' (Sophia) जिसका अर्थ है ज्ञान, के संयोग से बनता है।

इस प्रकार दर्शन तथा फिलासफी शब्दों की व्युत्पत्ति से ही हमें भारतीय तथा योरोपीय दृष्टिकोणों की भिन्नता स्पष्टतया प्रतीत होती है। यहां दर्शन केवल ज्ञान का प्रेम या विद्यानुराग ही नहीं है, अपितु तत्व-साक्षात्कार रूप है। यहां ज्ञान-मीमांसा दर्शन का साधन है, साध्य नहीं। साध्य है—तत्वमीमांसा, जिसके लिये प्रमाणों की मीमांसा की आवश्यकता है और जिसके जानने पर ही जीवन का लक्ष्य पूर्ण हो सकता है अर्थात् दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो सकती है। आत्मा या ब्रह्म ही परमतत्व है, जिसके साक्षात्कार के लिए सभी दर्शन उपाय करते हैं। इस प्रकार यहां दर्शन का प्रारम्भ आध्यात्मिक दृष्टि से होता है।

सत् की व्याख्या करने में भारतीय दार्शनिकों

के विषय की अपेक्षा विषयी आत्मा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। आत्मा को अनात्मा से पृथक करके जानना ही दार्शनिकों का मुख्य कार्य है। इसी कारण 'आत्मा को जानो' (आत्मानं विद्धि) यही भारतीय दर्शन का मूल मन्त्र रहा है।

इस प्रकार दर्शन के ऊपर संक्षेप में सूक्ष्म दृष्टिपात कर चुकने पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों ने अपनी दिव्य-दृष्टि से जिस तत्व का साक्षात्कार किया, उसी को दर्शन शब्द से कहा गया। यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि दर्शन का अर्थ साक्षात्कार है, तो विभिन्न दर्शनों में जो मतभेद है, उसका कारण क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि अनन्तधर्मात्मक वस्तु को विभिन्न ऋषि-मुनियों ने अपनी अपनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया और तदनुसार ही उसका प्रतिपादन भी किया। अतः यदि हम दर्शन शब्द के अर्थ को भावात्मक साक्षात्कार के रूप में ही ग्रहण करें, तो उपर्युक्त प्रश्न का अनायास समाधान हो सकता है। क्योंकि विभिन्न ऋषियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुसार वस्तु के स्वरूप को जानकर उसी का बार-बार चिन्तन और मनन किया तथा इसके फलस्वरूप उन्हें अपनी भावना के अनुसार वस्तु का दर्शन हुआ। यही भारतीय दर्शन का आन्तरिक रहस्य है।

इसके विपरीत पाश्चात्य दर्शन का उद्देश्य केवल मानसिक कौतूहल की निवृत्ति है। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि 'फिलासफी' का अर्थ विद्यानुराग है। आधुनिक पाश्चात्यदर्शन के जन्मदाता देकार्ते का कथन है कि दर्शन का प्रारम्भ संशय से होता है— (Philosophy begins in Wonder)। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए सर्वप्रथम वे सभी वस्तुओं और विचारों के अस्तित्व पर ही सन्देह प्रकट करते हैं। संदेह से ही वह मानसिक उत्कण्ठा भी निवृत्ति करते हैं। वे इस बात को नहीं बतलाते हैं कि जीवन में दर्शन का क्या मूल्य है, जीवन और दर्शन का क्या सम्बन्ध है ?

इसके विपरीत भारतीय दर्शन का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समस्त भारतीय दर्शन का लक्ष्य सांसारिक दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति अर्थात मुक्ति है। इस संसार में प्रत्येक प्राणी आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक, इन तीन दुःखों से पीड़ित हैं। अतः उक्त दुःखों की निवृत्ति का उपाय बतलाना ही दर्शन शास्त्र का मुख्य लक्ष्य है। दुःख, दुःख का कारण, मोक्ष तथा मोक्ष का हेतु खोजकर उसका प्रतिपादन करना दर्शनशास्त्र का कार्य है। जिस प्रकार चिकित्साशास्त्र में रोग, रोगहेतु, आरोग्य और भैषज – इन चार तत्वों का प्रतिपादन होता है, उसी प्रकार दर्शनशास्त्र में भी उक्त चार बातों का पता लगाना आवश्यक होता है।

क्रमशः

★ परमपूज्य श्री स्वामी
सारशब्दानन्द जी महाराज

भक्ति की महिमा से कौन अनभिज्ञ है ? स्वयं भगवान को भी भक्ति ही प्यारी है। श्रीरामचरितमानस के उत्तरकांड में ज्ञान को कृपाण की धार कहा है और भक्ति करने जन्मकरण रुपी संसार की अज्ञानता बिना अधिक परिश्रम किये नष्ट हो जाती है। इसीलिए हरिभक्त मुक्ति का निरादर कर भक्ति में आरुढ़ होते हैं । जिनके हृदय में रामभक्ति रुपी सुन्दर चिन्तामणि का निवास हो जाता है, वहाँ निरन्तर परम प्रकाश रहता है । यही मानो प्रभु प्राप्ति का सुगम उपाय है । गोस्वामी जी के शब्दों में:—

सद्‌गुरु वैद वचन विश्वासा, संजय यह न विषय के आसा।
रघुपति भगति संजीवन मूरी, अनुपान श्रद्धामसि पूरी ॥
राम भगति चिन्तामणि सुन्दर, बसई गरुड़ जाके उर अन्तर।
परम प्रकाश रूप दिन राती, नहीं कछु चहिअ दिया घृत बाती।

प्रभु की भक्ति संजीवनी जड़ी है। सद्‌गुरु रुपी वैद्य के बचनों में विश्वास करके श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि के अनुपात द्वारा यह जीवनमरण के रोगों से विमुक्त हो जाता है ऐसी सुगम और परमसुख देने वाली ईश भक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा ? जो हरिभक्त को छोड़कर दूसरे उपायों द्वारा सुख चाहते है, वे मूर्ख और जड़-बुद्धि बिना जहाज के तैर कर महासागर से पार जाना चाहते हैं । भक्ति की महिमा से ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे पड़े हैं। भक्ति का साधारण अर्थ है भय से मुक्ति। बात भी सच है, जिसके ऊपर इष्ट देव का कृपा हस्त होगा, फिर उसे भय काहे का ? हमारे सद्‌शास्त्रों में भक्ति के आचार्यों ने भक्ति के भाव चार बताए हैं। १-दास्य भाव, २-वातसल्य भाव, ३-सख्य भाव और ४-मधुर भाव ।

नवधा भक्ति श्री रामचरितमानस का वह परम विख्यात प्रसंग है, जिसमें भगवान् श्री रामजी के श्रीमुख से मतंगऋषि की शिष्या शबरी के प्रति भक्तित्व और प्रभु प्राप्ति के ९ साधनों का निरुपण हुआ है। नवधा भक्ति का प्रसंग यहां से प्रारम्भ होता है कि मेरे राम भगवान, जटायु को सद्‌गति प्रदान करते हुए आगे बढ़े। शबरी प्रेममग्न होकर प्रभु की प्रतीक्षा कर रही है और चिरकाल से आंखें

मार्ग की ओर बार बार देखती है कि मेरे राम कब आयेंगे ? श्री गुरुदेव के वचन स्मरण आते हैं । गुरुदेव का वचन था—"तेरी कुटिया में भगवान राम स्वयं पधारेंगे ।।" इतने में क्या देखा कि अन्तर्यामी भगवान राम उस तत्ववेत्ता मतंगऋषि का वचन पूरा करने के लिए शबरी के आश्रम के निकट आये । गोस्वामी तुलसीदास जी ने उस सुन्दर दृश्य का वर्णन श्री रामचरितमानस के अरण्य-काण्ड में इन शब्दों में किया है—

ताहि देई गति राम उदारा
शबरी के आश्रम पगु धारा ।
शबरी देखि राम गृह आये,
मुनि के वचन समुझि जिय भाये ।
सरसिज लोचन बाहुबिशाला,
जटामुकुट शिर उर वनमाला ।
श्याम और सुन्दर दोऊ भाई,
शबरी परी चरण लपटाई ।।
प्रेम मगन मुख वचन न आवा,
पुनि पुनि पद सरोज शिर नावा ।
सादर जल लेई चरण पखारे,
पुनि सुन्दर आसन बैठारे ।।

कन्द मूल फल सुरस अति, दिये राम कहुं आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खावऊ—बारहि बार बखानि ।।

पानि जोरि आगे भई ठाड़ी,
प्रभुहि विलोकि प्रीतो उर बाढो ।
केहि बिधि अस्तुति करउ तुम्हारी,
अधम जाति मैं जड़ मति भारी ।।
अधम ते अधम अधम अति नारी,
तिन महँ मैं मति मन्द गवारीं ।
कह रघुपति सुनु भामिनी बाता,
मानऊं एक भक्ति कर नाता ।।
जाति - पांति कुल धर्म बड़ाई,
धन बल परिजन गुण चतुराई ।
भक्ति हीन नर सोहत कैसे,
बिनु जल वारिद देखिय जैसे ।।
नवधा भक्ति कहहुं तोहि पाहिं,
सावधान सुनु धरु मनमाहीं ।।

भगवान का मनोहर सगुण स्वरुप है और कमल नेत्र लम्बी भुजाएं, जयमुकुट और गले में वनमाला पहिने हैं । श्याम और गौर दोनों भाईयों को देख कर प्रेममग्ना शबरी प्रभु के चरणों से लिपट गई प्रेम में मग्न होने से कण्ठ गद्गद् हुआ और शब्द उच्चारण नहीं होते । वह बार बार चरण कमलों पर शीश नवाती है । फिर पवित्र जल लेकर भग के सुन्दर चरण धोकर चरणामृत लिया तथा सुन्दर आसन पर बिठाया । वन के कन्दमूल फल जो मधुर रस से युक्त थे, भगवान राम को भेंट किए जिन को दशरथनन्दन मर्यादा पुरुषोत्तम प्रेममग्न होकर खाने लगे और प्रशंसा करने लगे कि ये बेर बहुत मधुर हैं । चाहे वे जैसे भी थे "सूर सागर" ग्रंथ में यह लिखा है—

वे बेर थे जूठे शबरी के

पण्डित राधेश्याम जी लिखते हैं..........
हम भी कहते हैं जो कुछ है सब प्रेम और आदर में है । तात्पर्य यह है कि भगवान प्रेममय थे और प्रेम राममग्न था । इसके पश्चात भगबान के सम्मुख खड़े हो स्तुति करने लगी । प्रभु अन्तर्यामी को देख प्रीति बढने लगी ! हे प्रभु ! मैं अधम स्त्री जाति हूँ, आपकी महिमा कैसे वर्णन करूं ? क्योंकि मैं नीच जाति तथा मन्दमति हूँ । सबसे नीच नारी है और उन नीचों में फिर मै और भी नीच हूं तथा मन्दमति, गंवार हूँ ।" यह सुनकर भगवान से रहा न गया, हृदय भर आया कि अपने को यह नीच क्यों कहती है ? भला पुत्र को पता नहीं कि

मैं राजा का पुत्र हूं ? सेवक को पता नहीं कि मैं भगवान का सेवक हूँ ? अपने को अनजान नीच ही जानता है, पिता-पुत्र की भूल को, स्वामी सेवक की भूल अभूल में दर्शाते हैं। जो सेवक मान नहीं चाहता और जो पुत्र पिता के ध्यान में लीन है, उसे घर की मालिकी की आवश्यकता नहीं। ऐसे सपूत सेवक को तत्व का उपदेश दिया जाता है—

कह रघुपति सुनु भामिनी बाता—
मानऊं एक भक्ति कर नाता ॥

रघुनाथ जी बोले—"प्यारी शबरी ! मैं तो एक भक्ति का नाता मानता हूँ। चाहे कोई उत्तम कुल तथा वर्ण का हो और उसे संसार की मान, प्रतिष्ठा, बल, चातुर्य, धन आदि प्राप्त हो, परन्तु भक्ति से हीन वह पुरुष अथवा जीव कैसा है जैसे जल बिन बादल होते हैं। अज्ञानी उनको ही बादल कहते हैं, परन्तु वे बिना वर्षा के चले जाते हैं तो अपनी निन्दा करवाते हैं। ऐसे ही भक्तिशून्य जीव ज्ञान-दृष्टि से निन्दा करने योग्य है—

जिन हरिभक्ति हृदय नहीं आनी,
जीवित शव समान ते प्राणी ।

वे जीव जो भक्ति से हीन हैं, वे जीवित भी मृतक हैं। मृतक को घरवाले घर नहीं रखते, निकाल कर जला देते हैं। उसी प्रकार भक्तिवान् प्रेमीजनों में भक्तिहीन पुरुष मृतक के समान है। गुरुमुख उनकी संगत ही नहीं करते। जैसे कबीर जी का कथन है—

सिंह साधु का एक मत जीवित ही को खाएं।
भावहीन मृतक दशा ताके निकट न जाएं ।।

साधु नाम जागृत पुरुष, ज्ञानवान, भक्तिपरायण का है। वह और शेर एक मत के है। दोनों जीवित को खाते हैं, मृतक के समीप नहीं जाते। जो भाव भक्ति से हीन हैं, वे उनकी दृष्टि में मृतक के समान हैं। मृतक को नहीं खाते अर्थात् जीवित से ज्ञान-गोष्ठी और प्रेम करते हैं। प्रभु राम बोले-"शबरी ? मैं तुझे नौ प्रकार की भक्ति सुनाता हूं। तू सावधान होकर सुन और उसे मन में धारण कर ले।"

प्रथम भक्ति : सत्संग—

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा,
दूसरी रति मम कथा प्रसंगा ।।

प्रथम भक्ति साधुजनों की सगत करना है । यहां भक्ति किसी साधन विशेष का नाम नहीं, परन्तु इस बात का पता करना होगा कि कौन से सन्त का संग करना है ? सन्त किसे कहते है जिनसे दूसरी भक्ति प्राप्त हो सके ? वह है मेरी कथा सुनाने वाले का नाम सन्त है। जैसे—

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा,
राम ते अधिक रामकर दासा।
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा,
चन्दन तरु हरि, सन्त समीरा ।
सबकर फल हरि भक्ति सुहाई,
सो बिनु सन्त न काहू पाई ।

काकभुशुण्डि गरुड़जी को कहते हैं कि मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि राम से भी बड़ा राम का दास होता है। क्योंकि रामरुपी सागर में जो भाप उठती है, वही मेघ सन्तजन है, जिनकी उत्पत्ति रामरुपी सागर से हुई है वही धीर पुरुष सन्त कहलाते हैं। यहां कपड़े रंगने का नाम साधु नहीं है, कर्तव्य करने वाले का ही नाम साधु है। फिर राम तो चन्दन वृक्ष है और सन्तजन समीर (वायु) चन्दन रूपी राम को स्पर्श करके दूसरों को भी सुगन्धित करते हैं। इसलिए सबसे अधिक फलदायक भक्ति है—जो बिना सन्त के कदापि प्राप्त नहीं होती अर्थात् किसी और स्थान से नहीं मिलती। सन्त ही

बतायेंगे कि राम का निवास कहां है तथा कैसे मिलता है ? इस नवखण्ड शरीर में दशमखण्ड बंद पड़ा है, जहां सन्त का आना जाना होता है। वही दूसरों को वहां ले जा सकते हैं। जो नौ खण्ड से छुट्टी पायेगा वही सन्त के साथ उस दिव्य राम का दर्शन पायेगा। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी भीलनी को नवधा भक्ति में प्रथम भक्ति सन्त की संगत पर जोर दे रहे हैं। सन्त का संत करने से व्यापक राम की प्राप्ति सहज ही में होती है। पहली भक्ति करते ही दूसरी प्राप्त होगी। सन्तजन मेरी कथा वार्ता सुनायेंगे।

सो अब विचारणीय बात यह है कि आज के युग में कथा सुनाने वाले भी अनेक यही जानते हैं कि कथा सुनकर ही राम मिलेंगे। कथा सुनना ही राम का मिलाप और राम का रिझाना समझते हैं। वास्तव में कथा सुनाने का अधिकारी वही है जो राम को देखता और सुनता हुआ राम में लीन है। साक्षर ही निरक्षर को पढा सकता है। एक अध्यापक है जिसका वेतन कुछ रुपये है, परन्तु लाखों का हिसाब समझा देता है। समझने वाले को फिर लाख कमाने में परिश्रम करना पड़ता है, तब लखपति बनता है। सद्शास्त्रों ने सन्त और राम में भेद नहीं माना। दोनों को एक ही कहा है। जैसे गुरु अर्जुनदेवजी का सुखमनि साहिब में वाक्य है—

सन्त संग अन्तर प्रभु डीठा,
नाम प्रभु का लागा मीठा।

सन्त राम को मिला सकता है, असन्त नहीं मिलाता। जो कथा ही कर सकते हैं और स्वयं निज घर के भेदी नहीं, वे संसार में जिज्ञासुओं को धोखा देते हैं और स्वयं अज्ञान में रहकर अनेक व्यक्तियों को नक्शे दिखाकर देश भ्रमण करवाते हैं। नक्शे देख देख कर मन को रिझाना मन्द जिज्ञासु का कार्य है। जैसे कबीर जी का वाक्य है—

काए मूंडू तेंहि गुरु को जाँ ते भ्रम न जाए।
आप डूबा चहुं वेद में चेले दिये बहाय॥

जो स्वयं अभी कागजों की सैर करता है, निधि ध्यान से शून्य है, श्री कबीर जी तो उसे गाली निकालते हैं कि उसने किसी को जितना रास्ता बताया, गलत बताया। डाक्टरी की किताबें पढने से डाक्टर नहीं बन जाता। व्यावहारिक जीवन बनाकर ही डाक्टरी की उपाधि मिलती है। यदि पढ़ने से कुछ प्रभाव होता तो जब किसी के मरने की तार आती है तो सबसे पहिले उस समाचार को तार लेने वाला कर्मचारी ही सुनता है, परन्तु रोते नहीं हैं। ठीक उसी प्रकार सुनने-सुनाने या पढ़ने से कोई लाभ नहीं होगा, जब तक कि अनन्तर्वृत्ति करके इस शरीर में उस ज्योतिस्वरूप राम को न देखा जाये। स्वयं देखकर ही दूसरों को दिखाया जाता है। जैसे गुरु ग्रन्थ साहिब में कहा है—

राम नाम रतन कोठरी गढ़ मन्दिर एक लुकानी।
सत् गुरु मिलें तो खोजिये, मिल ज्योति-२ समानी॥
माधो साधुजन देऊ मिलाये।
देखत दरश पाप सब नाशे, पवित्र परम पद पाये।

वास्तविक तत्ववेत्ता महापुरुष आत्मदर्शियों ने विद्या पढ़ने-पढ़ाने से रोका नहीं, परन्तु पढ़ने से अहंकार बढ़ता है और घर की खोज का विचार उत्पन्न नहीं होता। जैसे मुनीम साहूकार का बही खाता ही देखकर मन प्रसन्न कर लेता है। हजारों-लाखों का हिसाब करता है; परन्तु उस

धन का स्वामी साहूकार ही होता है । मुनीम जानता बहुत कुछ है, परन्तु स्वामी नहीं होता । श्री गुरु अर्जुनदेव जी फरमाते हैं—

जो प्राणी गोविन्द ध्यावे,
पढ़्या अनपढ़्या परम गत पावे ।

जगद् गुरु शंकराचार्य जी के चार शिष्यों में एक निरक्षर तथा सरल स्वभाव का शिष्य पद्मपादाचार्य था जिसको शेष तीन शिष्य अच्छा न समझते थे । क्योंकि वह निरक्षर थे । वे कहते थे कि जब हम यह सुनते हैं कि यह हमारा गुरुभाई है तो हमारा अपमान होता है । परन्तु पदमाचार्य जी गुरुमुख थे । गुरुजी की सेवा शुद्ध हृदय से करते तथा प्रत्येक प्रकार की आज्ञा मानना, अपने हाथों से शरीर की सेवा करना हो अपना जीवन समझते थे, गुरुमूर्ति का ध्यान, गुरुवाक्य में लीन रहना ही अपनी समाधि जानते थे । एक दिन श्री शँकराचार्य जी गंगा स्नान कर रहे थे जब वे स्नान सेवार्थ जल में उतरने लगे । जल का प्रवाह देखा तो विचार करने लगे यदि गुरुदेवजी के पवित्र शरीर का जल मेरे शरीर को स्पर्श करे तो मेरी भक्ति और श्रद्धा नष्ट होती है । जल जिधर से आता है यदि उधर खड़ा हो जाऊं तो जल पहिले मेरे शरीर के साथ स्पर्श कर फिर गुरुजी के पवित्र शरीर को लगेगा, यह भी मेरा धर्म नहीं । इसी विचार में थे कि अकस्मात कमल पत्र को देखकर कहा—'बह न जाना मेरे भार को सम्भालना ।" यह कहकर पत्ते पर खड़े हो गये और गुरुदेव को स्नान करने लगा गये । तब दूसरों ने देखा कि इसने यह सिद्धि कैसे प्राप्त कर ली । उनके मन में द्वेष उमड़ पड़ा । इतने में आचार्य जी की दृष्टि उन पर पड़ी कि पद्मपादाचार्य ध्यानमग्न हो सेवा कर रहा है तब प्रसन्न होकर वरदान दिया और उन्हें तब से पद्मपादाचार्य के नाम से पुकारने लगे । ब्रह्मविद्या का दान देकर बन्द किवाड़ खोल दिये । यह संक्षिप्त कथा है । भावार्थ यह है कि जानने वाले का नाम सन्त है जिसको गुरु-कृपा से ऐसी दृष्टि प्राप्त है चाहे वह जैसा भी है वह सन्त ही है । सो ऐसे साधुजनों की महिमा और भी अनेक रूपों में शास्त्रों ने बखानी है । यहां महाप्रभु राम भी ऐसे सन्तों का संग करने के लिए कह रहे हैं ।

द्वितीय भक्ति ; हरि कथा में प्रीति

सन्त वह है जो अपने लोक में रहता हुआ इस मृत्युलोक में से अमरलोक तक जीवों को ले जाता है । वह सन्त साधना में पूर्ण है । बाहर से वृत्तियों को समेटकर अन्तर्देश में लीन है और प्रभुराम के सत्य स्वरूप में सदा स्थित है । ऐसे दयावान् साधु की संगत और उनसे अपने स्वरूप की खोज करने का नाम ही प्रथम भक्ति है । अब दूसरी भक्ति और पहली भक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं क्योंकि दूसरी भक्ति भी ऐसे सन्त से मेरी कथा प्रसंग के रूप में मिलेगी । उन से मेरे गुण और मेरे तक पहुँचने का मार्ग पूछता है । बस ऐसे सन्त को मिलने का फल यही है कि मेरी प्राप्ति हो और कामना का त्याग हो । केवल तत्ववेत्ता पुरुष को मिलने का यही सिद्धांत है कि बिछुड़ा हुआ जीव राम में लीन हो जाए । ऐसे सन्त की महिमा बेअन्त है जो अनात्म पदार्थों से जीव के बन्धन छुड़ाकर एक रस आत्मा में लगा देते हैं । तथा जड़-चेतन का निर्णय करके दोनों वस्तुओं को जिज्ञासुओं के सामने रख देते हैं कि यह नाशवान है और यह अविनाशी है । अब जैसा जी चाहे उस पर विश्वास करो और फिर ग्रहण कर लो । तब यह जीव पूर्ण जिज्ञासु बनकर अपने ही स्वरूप अर्थात मेरे चरणों में लीन रहता है । इस प्रकार द्वितीय भक्ति का निरूपण पूरा होता है ।

* * *

। गीत ।

— बलदेव राज "शान्त" —

गीत अगर मिलता न मुझे सारे आंसू धोने वाला –
पीड़ा मेरी गली-गली में, वेश्या बनकर जाया करती ।।

रह रह उठता दर्द हृदय का,
पीड़ा की ज्वाला जल जाती !
धूमकेतु सिर पर मंडराता,
जग को मेरी बात न भाती !

गीत अगर धीरज नहीं देतें शूल भरी इस विश्व डगर पर—
धूल धूसरित काया मेरी पग-पग पर भरमाया करती ।। —१

मन्वन्तर तक मिटे न अन्तर,
जन्तर मन्तर काम न आये !
अन्तर के पट खुले न खोले,
प्राण निरन्तर पास न आये !

गीत अगर ये साथ न देते सांसों के अनजान सफर में –
जग भर के गम कलम बेचारी किस सरगम पर गाया करती ।।—२

प्रेम अन्ध है रुप बधिर है,
ज्ञान खड़ा सिरहाने रोता !
कल की बीती बात न लौटी,
समय अश्रु की माल पिरोता !

गीत अगर रखने नहीं देते अपनी गोदी में सर मेरा—
मरघट की खामोश उदासी मुझ पर नित छा जाया करती ।। —३

पण्डित, मौमिन पादरियों ने
तप तप कर यह सार निकाला !
" प्रेम पाठ के अक्षर ढाई "
पढ़े बिना नहीं मिले उजाला !

गीत अगर चातक की पीड़ा बादल जल तक भेज न पाते—
सचमुच धरती बिना बून्द के प्यासी ही मर जाया करती ।। —४

The Relevance Of Swami Rama Tirha's Message Today

By

(DR. HIRA LALL CHOPRA, M.A., D.Litt Calcutta University)

(Contd. from last issue)

Spiritualised Politics.

Rama Tirtha urged for the resuscia-tion of the ancient glory of India. His bel-ief was that political freedom could be achieved for the country if the Vedantic teaching of love, self-sacrifice and fearless-ness are put into practice. Greeks, Modes, Sassanians and Scythians could not gain the control of the country as religion then was actually lived and not only professed. To-day we gained our freedom due to the self-sacrifice of the few, who martyred them-selves for an ideal They considered themselves to be the denizons of the whole vast country of India and not of one state or the other Watertight compartmentalism which has ent-ered into our thinking after the achievement of independence is creating new dangers, oating into the vitals and jeopardising our very freedom. Corruption is rampant from top to bottom and selfishness is the order of the day. Spiritualism and religion find no place in the modern set-up. The religious ideas of fraternity, cooperation and fellow-feelling are conspiciously absent from our daily mundane life. Practical Vedanta made people strong and they could resist successfully the onslaughts of Phoonicians, Egyptians, Sassanians, Romans and the Greeks. When Vedanta as a religion was at its lowest odd, even an ordinary brigand like Mahmud of Ghazni could plunder India 17 times. As a matter of fact, it was not the religion which was responsible for the decline of the coun-try as European and other historians make us to believe, but on the contrary, it was the lack of it. As Rama Tirtha puts it in a

nutshell if theseven-fold principles of fearlessness, work, self - sacrifice, self-forgetfulness, universal love, cheerfulness and self-reliance are observed religiously, there was success in store for the individuals and the groups. To the problem of population, Swamiji prescribed self-restraint and purity. The incorporation of moral values in our life could save the country from confusion and despair.

Nationalism Of Swami Rama Tirtha

At the time of the Lahore Session of the Indian National Congress of 1893, Rama then as a student, was least impressed by the rhetorical oratory of the President-elect. Dada Bhoy Naraoji. Should we conclude from it that he had no patriotic fervour ? Least of it. As a student and a teacher, he devoted himself ceaselessly to his work and debbled not in politics. While in America (1902-1904) V G. Joshi, a Maratha from Poona, who acted as his secretary in San Fransisco, prevailed upon the Swami to do something for the country and more particularly on the lines of Tilak School of politics. Rama believed in pure nationalism. In his lecture on the 'Future of India' he identifies himself with the whole of India. His nationalism was not primarily based on politcal and economic considerations (though he enthusiastically worked in these directions also); but along with technical progess he was for a spiritual unity with all Indians irrespective of their caste, creed or colour. He induced some of the Universities there to institute scholarships and fellowships for technical education for Indian students, who after their return to India might help in the economic progress of the country. He established some centres in U. S. A. for the eradication of untouchability from Hinduism. The cramping concept of relegious sectarianism and orthodoxy, he said should be ended. Ram decried false creeds, empty dogmas and formal ceremonies and he wanted masses to be elevated through powerful social agency and Practical Vedanta -the only religion of man. Vedanta as religion should be preached for effective reform in political, domestic, intellectual and moral spheres through love, which harmonises peace and freedom, energy and tranquility, bravery and love. A dynamic spirit of natcnality is required to be cultivated for common with all inhabitants of India professing different creeds and faiths, who symbolise Mother India. To Rama, Mother India was a consecrated diety **Narayana in Daridra Narayana** (poor starving People), who are Mother's sacred divine manifestations. He wanted all caste

all class distinctions transcended into a national fellow feeling. Women, children and workers should be educated to attain this goal. Real nationalism constituted in creating love and union among the masses, educating labour classes and promoting living vernacular languages and celebrating national festivals.

Rama's Universalism

Besides being an ardent patriot Rama was a staunch universalist. He was for human fraternity. To him a person could never realise unity with God - The All, except realising unity with the entire creation throbbing every fibre of his frame.

Rama stood for freedem of thoguht and action for all. He did not tie himself of old dogmas and scriptures. Parading of scriptutral and scholastic studies would do us no good. We must cultivate renunciation and socialise Vedanta. The Supreme Spiritual law of unity cannot be flouted. Even powerful governments whose laws donot confirm to the Divine Law, suffer early destruction, The rights or **haq** of a person, must be based on **Him** (God), A sannyasi is a missionary to see that the Law of God works to the satisfaction of all. The moral fervour in a domocracy ensures its stability.

Today when there is dearth of morality and paucity of spiritual approach to political, economic, national and international problemes, the teachings of Swami Rama Tirtha if studied assiduously and propagated seriously, a better world can be reshaped and a lasting peace and tranquility can be guaranteed to the world suffering from chaos and disorder.

"We Are As Young As We Feel"

Years may wrinkle the skin; the soul is wrinkled if we give up love and loyalty. Whether we are twenty or seventy we are young so long as we have in our heart the spirit of wonder, of curiosity, the chaliange to life and joy is adventure. This is the meaning of the saying that we are as young as we feel.

=(Living with a Purpose, Dr. Radhakrishana)

आपका परिचय

भारत की पावन भूमि ने विश्व संस्कृति को सन्तों के रूप में देन देकर ही विश्वगुरु-पद को प्राप्त किया था। विश्व के किसी भी कोने का तत्ववेत्ता ऐसा नहीं रहा जिसके चिन्तन को भारतीय सन्त परम्परा के विचारों ने प्रभावित न किया हो यहां तक कि कुछ विद्वानों ने भारतीय चिन्तन को ही इन समस्त चिन्तनापद्धतियों का मूलस्रोत माना।

ऐसे हिन्दुस्तान के ही एक वर्तमान खण्डरूप पश्चिमी पाकिस्तान में आपका—स्वामी सूर्यप्रकाश जी का—जन्म हुआ था। लेकिन पाकिस्तान बनने के बाद आपका राष्ट्रप्रेमी परिवार वहां से बदांयू (उ०प्र०) आ गया था। इसी उत्तर प्रदेश में स्वामी जी का शैशवकाल व्यतीत हुआ। बाल्यावस्था से ही अपनी अन्तर्मुखी-वृत्ति के कारण आपने जीवन की नश्वरता की अनुभूति की, तथा साथ ही, मधुर गान के फलस्वरूप व सौम्यता, सरलता की मूर्ति होने के कारण रामप्रिय आपने रामायण के सुमधुर गान से अपने परिवार व ग्राम के आध्यात्मप्रेमियों को भक्ति के पावन मार्ग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः जगत की क्षणिकता व नश्वरता के अनुभव ने स्वामी जी को अन्तर से परोक्षतया संन्यास की ओर प्रेरित करना प्रारम्भ किया, सम्भवतया, अब स्वामी जी को परिवार छोटा लगने लगा था तथा वह चाहते थे कि सारे परिवार के प्राणी केन्द्र पर आकर मुझ से मिले जहाँ वे सब हट गये हैं। स्थिति बढ़ती गई और आखिर १९५८ में वैराग्य की व्यावहारिकता के फलस्वरूप आपने गृहत्याग दिया। दो वर्ष भारत भ्रमण के अनन्तर १९६० में त्रिवेणी के पावन तट पर बसन्तपंचमी के शुभ दिन आचार्य श्री स्वामी गोविन्द प्रकाश जी महाराज के श्री चरणों में आपने अपने को समर्पित कर दिया। इसी दिन यमलार्जुन की भांति स्वामी सूर्यप्रकाश जी और स्वामी ॐप्रकाश जी का संन्यासी जगत् में प्रादुर्भाव हुआ। जहाँ स्वामी ओमप्रकाश जी ने अपने प्रचार को कानपुर के समीप चुना वहीं स्वामी जी ने अपने सात्विक व्यक्तित्व के कारण अपना प्रचारक्षेत्र गुर्जर प्रदेश (अहमदाबाद) को माना।

—स्वामी सूर्यप्रकाश जी—

इस वर्ष आप सद्गुरुदेवजी की आज्ञानुसार महामण्डलेश्वरी गीता भारती जी के आश्रम में (अहमदाबाद) चातुर्मास कर रहें हैं। इसी वर्ष स्वामी जी १०००।- रुपये गुरुचरणों में भेंट करके स्वामी रामतीर्थ मिशन के संरक्षक सदस्य बने हैं। राम दरबार स्वामी जी की दीर्घायु एवं उन्नति की कामना करता है।

—सह-सम्पादक

★ आश्रम समाचार ★

३ जुलाई को दिल्ली शाखा द्वारा आयोजित गुरुपूर्णिमा उत्सव में सम्मिलित होकर ५ जुलाई तक वहीं दिल्ली में ही निवास करने के बाद ६ की प्रातः महाराजश्री ने सोलन की ओर प्रस्थान किया। वहां श्रीमती सुशीला कपूर को, जो आजकल वानप्रस्थाश्रम का जीवन व्यतीत कर रही हैं, मार्ग निर्देश दिया। ९ जुलाई तक वहां रहने ही पाये थे कि दिल्ली से स्वामी गुरुचरणदास जी महाराज की अस्वस्थता की सूचना आपको तार द्वारा मिली। स्वामी जी को लाजपत नगर स्थित मूलचन्द हास्पीटल में भरती कराया गया था। परमाध्यक्ष जी महाराज ११ की प्रातः दिल्ली पहुंचे। अब तक विदित सूत्रानुसार परमपूज्य गुरुचरणदास जी का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत ठीक है। दिल्ली में ही १६ जुलाई तक निवास करने के पश्चात् महाराजश्री ने राजमाता सिन्धिया द्वारा आयोजित सम्मेलन में, जिसका आयोजन आपकी ही अध्यक्षता में होना था, भाग लेने हेतु १७ को प्रातः ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया। आपके साथ वहां स्वामी हंसप्रकाश जी व स्वामी स्वतन्त्रमुनि जी महाराज भी थे। वहां के बाद २१-२२ दिल्ली रहकर कुवेत निवासिनी श्रीमती शशि नन्दा जी के साथ आप देहरादून पधारे, देहरादून मिशन में श्री मोहन जौली जी सपरिवार पूर्व से से ही महाराज श्री के दर्शनार्थ पधारे हुए थे। अब १५ अगस्त तक महाराज श्री के आश्रम पर निवास की सम्भावना की जाती है।

इस जुलाई मास में दूनघाटी के अध्यात्मप्रेमियों के भाग्य की सराहना करनी पड़ेगी क्योंकि उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरुशंकराचार्य अभिनव स्वामी सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज के दर्शनों का तथा उनके आशीर्वचनों को ग्रहण करने का; रविवारीय सत्संग में विद्वत् प्रवर ने बताया कि स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का किस प्रकार उस पीठ से सम्बन्ध है। तदनन्तर जीव के वास्तविक स्वरूप सत्, चित्, आनन्द रूप पर, जिसकी ओर यह जीवात्मा आज भी परोक्ष व अपरोक्ष रूप से बढ़ रहा है. ओजस्वी विचार रखते हुए भारतीय संस्कृति के उद्धारार्थ हिन्दू-जाति की एकता पर बल दिया तथा साथ ही ऐसी भूमि तैयार करने की बात कही जिससे हम अपने को सुरक्षित रखते हुए तथाकथित विश्वहित से अलग हट सही अर्थों में विश्व का व समाज का कल्याण करें। दि० १२ को स्वामी हंसप्रकाश जी महाराज व श्री सभ्रवाल जी के विशेष अनुरोध पर आपने राजपुर स्थित मिशन में भी पदार्पण किया। प्रकृति की प्रसन्नता तो वर्षा के रूप में थी ही पर मिशनस्थ साधक वृन्द भी कम प्रसन्न न था। पत्रं पुष्पं—द्वारा प्रवर का अभिनन्दन किया गया। वहां—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः—इस वेदान्त सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये, वर्तमान आधुनिक शिक्षा की समस्याओं का परिहार किया व बताया कि शिक्षा गुरु द्वारा शिष्य पर आरोप नहीं है बल्कि गुरु तो माध्यम है शिष्य के अन्दर के ज्ञान को बाहर व्यक्त मात्र करने का, इस प्रकार गुरु मात्र अव्यक्त को व्यक्त सा करता है। छिपी हुई वस्तु को अनावरित करता है पैदा नहीं।

आश्रम के परितः प्रकृति पूर्णतया आनन्दित है। इस समय बाबा विश्वनाथ यति जी महाराज आश्रम में विराजमान हैं तथा साधकों के लिये प्रेरणास्रोत बन स्वयं आत्मस्थ शिवानुभूति में रत रह आनन्दानुभूति कर रहे हैं।

— सह-सम्पादक

दूरभाष-८४२२१ राजपुर, ४२६७ देहरादून, तार का पता-(वेदान्त) देहरादून, रजि० नं. डी. एल. १५

—सूचना—

१-मासिक पत्रिका 'राम संदेश' न मिलने पर अपने समीपस्थ डाकखाने (पत्रालय) से पता करने के पश्चात् हमें सूचित करें। क्योंकि कभी कभी किसी कारणवश "रामसन्देश" १५ ता० तक निकलता है । इसलिए शिकायत पत्र अपनी अपनी ग्राहक संख्या सहित दिनांक २० के बाद प्रेषित करने का कष्ट करें।

२- कृपया आप १९७७ का १० रुपये चन्दा शीघ्र भेजने की कृपा करें। यदि आपने १९७६ का शुल्क प्रेषित नहीं किया, तो वह भी साथ ही भेज दें ।

३— आप आश्रम में किसी भी प्रकार का धन भेजते समय यह लिखना न भूलें कि यह धन किस निमित्त भेजा जा रहा है।

४-यह प्रार्थना है कि जो पाठक इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं वे अपना सदस्यता शुल्क सम्पादक के नाम प्रेषित करें। सदस्यों को आजीवन पुनः बिना किसी शुल्क के यह पत्रिका प्रेषित की जायेगी।

५- राम सन्देश आपकी अपनी पत्रिका है । इसके ग्राहक बढ़ायें और शहन्शाह राम, स्वामी हरिॐ जी महाराज तथा वेदान्त के विचारों को जन-साधारण तक पहुंचाने में हमारा सहयोग दें।

धन्यवाद

मैनेजर
देसराज मलिक

स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून (उ०प्र०) के लिए प्रकाशक स्वामी गोविन्द प्रकाश द्वारा न्यू आईडियल प्रिंटिंग हाउस, ४ बी, नेशविला रोड देहरादून में, मुद्रित ।

(राम-सन्देश)

सितम्बर १९७७

एक प्रति
भारत में ८५ पैसे, विदेश में १ रु०

वार्षिक भेंट
भारत में १० रु०, विदेश में १५ रु०

आजीवन सदस्यता शुल्क :
भारत में—१००/-, विदेश में—५००/-

—संस्थापक—
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज

—व्यवस्थापक—
आचार्य स्वामी गोविन्दप्रकाश जी महाराज

विषय-सूची

आवश्यक सूचनायें

१—'राम सन्देश' के विदेशी ग्राहक अपना वार्षिक शुल्क वार्षिक १५ भेजें। क्योंकि परमाध्यक्ष जी की आज्ञानुसार १२ रु० के स्थान पर ३ रु० वृद्धि का निर्णय लिया गया है।

२—स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून के आजीवन सदस्यों को कार्यकारिणी की १९७७ गोष्ठी के निर्णयानुसार यह सूचित किया जाता है कि सदस्य शुल्क वार्षिक १२ रु० के स्थान पर २० रु० कर दिया गया है तथा उन सदस्यों को मासिक पत्रिका का प्रेषण मास जनवरी १९७८ से निःशुल्क किया जाये। अतः सदस्य अपना वार्षिक शुल्क भेजते समय १२ रु० के स्थान पर २० रु० प्रेषित करने का कष्ट करें।

अध्यात्म और आध्यात्मिक साहित्य पर वज्रपात

संसार के विभिन्न नियमों में मृत्यु एक अटल और सत्य नियम है। इसकी सत्यता और वास्तविकता को समझने वाले विचारकों को यह मात्र पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़ों को पहनने के रूप में सुख प्रदान करती हैं और वे खुशी में कह उठते हैं मृत्यु से भयभीत कायरों को देखकर—जिस मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द। ऐसी जीवन की वास्तविकताओं को समझने वाले सन्तसेवी, वेदान्त केसरी ब्रह्मलीन निर्मल जी के मुख्य शिष्य, अन्तर और बाह्य समृद्धि से सम्पन्न श्रीमान् सेठ श्री हरि कृष्ण दास जी के निधन का समाचार २९ अगस्त ७७ के नवभारत टाईम्स समाचार-पत्र में पढ़कर अध्यात्म प्रेमी समाज के हृदय पर बहुत बड़ा आघात पहुंचा। "मनन पत्रिका" के द्वारा धर्म को दैनिक दृष्टांतों का प्रयोग कर समझाने में प्रयत्नरत सेठ जी ने मुमुक्षु नामक आध्यात्मिक उपन्यास के द्वारा जिज्ञासु की वास्तविकता की ओर संकेत करके साधकों के जीवन में बहुत बड़ा योगदान दिया, जिस उपन्यास को रामप्रेमी पाठकों ने रामसन्देश के माध्यम से धारावाहिक रूप से पढ़ा होगा। रामसन्देश और रामतीर्थ मिशन के साथ आपका आत्मीयवत् सम्बन्ध था। अलीगढ़ शाखा ने परमश्रद्धेय स्वतन्त्र मुनि जी महाराज की अध्यक्षता में मौन रह सेठजी को अपनी श्रद्धान्जलि अर्पित की।

रामपरिवार उनके त्यागमय जीवन को आदर्श रूप में सबके प्रेरणा का स्रोत मान परमात्मा के चरणों में प्रार्थना करता है कि सेठ जी की अन्तर आत्मा को यह अपने चरणों में स्थान दे तथा परिवार के सद्-सदस्यों को इस शोक में धैर्य व विवेकपूर्वक दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)

सह सम्पादक—
काका हरिॐ "निर्द्वन्द्व"

★ ॐ ★

'राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'

—स्वामी राम

वेदान्त, अध्यात्म, संस्कृति, धर्म एवं भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा

स्वामी राम के आदर्शों का उपस्थापक एकमात्र लोकप्रिय मासिक—

राम-सन्देश

वेदोपनिषदां तत्त्वम् सत्यं नित्यं सनातनम्।

तत्सर्वं "रामसन्देशे" पत्रेऽस्मिन्नवलोक्यताम्॥

वर्ष २६ | राजपुर-देहरादून-सितम्बर १९७७ | वार्षिक शुल्क : १० रु०,

अंक ९ | | एक प्रति-८५ पै०,

श्री राम-तन

बालकाण्ड प्रभु पाँय, अयोध्या कटिमन मोहै,

उदर बन्यो आरन्य, हृदय किष्किधा सोहै।

सुन्दर ग्रीव, मुखारबिन्द लंका कहिगाए,

जेहि महँ रावण आदि निसाचर सबै समाए॥

उत्तर मस्तक कांड हरि, एहि विधि तुलसिदास मन।

आदि अन्त लौ देखिये, रामायण श्री राम-तन॥

गतांक से आगे:—

व्यावहारिक वेदान्त

सुधार

—स्वामी राम

आजकल संसार में परोपकार का बड़ा कोलाहल सुनाई देता है। यह शब्द प्रत्येक कान में सुनाई देते ही हृदय में सहानुभूति का जोश उत्पन्न करता है, और सुननेवालों के मन में सुधार करने का विचार उत्पन्न कर देता है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि परोपकार के यथार्थ अर्थ से तो वह लोग जानकारी नहीं प्राप्त करते, केवल बाह्य 'हाहा-हूहू' की लेक्चरबाजी में लग जाते हैं। इसीलिये परोपकार के वास्तविक अर्थ न समझने से और उस पर आचरण (अमल) न करने से सुधारक महाशय से न तो संसार का पूरा-पूरा उद्धार होता है, और न उसे स्वयं कुछ लाभ प्राप्त होता है। अतः औरों का सुधार करने से पहले सुधार के इच्छुक को सुधार के अर्थ और साधनों से जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। अंग्रेजों के यहां आजकल यह उक्ति जोर पकड़ती जाती है कि "पहले अपने को किसी चीज के अधिकारी बनाओ (First deserve and then desire)"। किन्तु वेदान्त का इस विषय से सम्बन्ध नहीं। वेदांत में तो यह सिद्धांत अनादि काल से चला आता है कि 'अपने को किसी वस्तु के अधिकारी तो निःसन्देह बनाओ, किन्तु उसकी उसकी प्राप्ति की इच्छा न करो (Deserve only and need not desire)।" क्योंकि वेदान्त पुकार-पुकार कर कहता है कि जिन वस्तुओं का आपने अपने को अधिकारी बनाया है, अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् वे वस्तुएं आपके पास बिना किसी प्रकार की इच्छा के किसी न किसी के द्वारा अवश्य चली आयेंगी। अधिकारी बनने या होने से कोई अभिप्राय नहीं है, वरन् इस प्रबंध का स्पष्ट तात्पर्य और उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार से एक मनुष्य छोटे-छोटे पदों से उन्नति पाता हुआ एक उच्च पद पर पहुंच कर राजा का पद पा लेता है, तो उस समय वह अपने राज्य की समस्त सम्पत्ति, महल और धन-धरती के पाने का अधिकारी हो जाता है। अब वह इन वस्तुओं के पाने की इच्छा प्रकट करे

[जनवरी १६०२ में भारत-धर्म-महामण्डल भवन मथुरा में स्वामी राम का व्याख्यान, श्रीनारायण स्वामी द्वारा लिखित नोटों से।]

या न करे, उसके सिंहासनासीन होने पर पर वस्तुएं उसकी सेवा करने को अपने आप उसके पास चली आती हैं, वरन् उस समय उसका इच्छा करना अपने आपको छोटा बनाना है, और अपने को धब्बा लगाना है। यह एक कहानी है कि एक महात्मा इस बात के अधिकारी हो गये थे कि उनमें निकट सांसारिक पदार्थ जानकर उनकी नित्यप्रति सेवा करें, किन्तु एक अवसर पर एक व्यक्ति जब उनके लिए बताशों का थाल लाया, तो महात्मा जी ने बताशे लेने की इच्छा करके अपने मुखारविंद से यह उच्चारण किया कि दो बताशे हमको दे दो। इस पर थाल लाने वाले ने दो बताशे महात्मा जी को दे दिये, किन्तु शेष बताशों को उन्हें लालची समझने के कारण वहां रखना उचित न समझकर वह व्यक्ति थाल लौटा ले गया। इस प्रकार महात्मा जी शेष बताशों से भी वंचित रहे, और इच्छा प्रकट करने के कारण थाल वाले की दृष्टि में भी कम उतरे। इसी तरह अधिकारी होने पर भी अधिकार-योग्य वस्तु की इच्छा प्रकट करना अपने अधिकारों को खोना और अपनी इच्छा को बट्टा लगाना होता है। भगवन्! यदि आप अपने आपको समस्त वस्तुओं का मालिक और अधिकारी बनाना चाहते हैं, तो उठो, अपने स्वरूप में झण्डे गाडो, अपने असली स्वरूप में लीन हो जाओ, और अपने असली स्वरूप में मस्त होकर सारे संसार के ईश्वर और मालिक बन जाओ। आपका अपने स्वरूप में लीन होना ही आपको सारे संसार का सम्राट बना देगा। यह सम्राट-पद केवल इस संसार का ही नहीं प्राप्त होगा, वरन् आपका अपने स्वरूप में निवास करना आपको समस्त लोक और परलोक का सम्राट बना देगा। आपने इस वास्तविक साम्राज्य का सिंहासन सम्भालने पर आप समस्त धरती और आकाश अर्थात् लोक और परलोक की वस्तुओं के स्वामी और अधिकारी हो जाओगे। केवल असली साम्राज्य पाने की आवश्यकता है। संसार के पदार्थ आदि तो अपने आप आपकी सेवा करने को तत्पर हो जायेंगे। आपको उस समय इच्छा करने की भी आवश्यकता न होगी। उठो! उठो!! उठो!!! अपने स्वरूप में डेरे लगाओ, और विराट् स्वरूप के सिंहासन पर आरुढ़ हो, फिर आपके केवल एक संकेत से ही सारे संसार के काम पूरे होते चले जायेंगे। परोपकार का उपाय केवल 'हा-हा-हूहू' नहीं, वरन् सर्वोत्तम परोपकार अपने आत्मा में लीन होना ही है। जैसे विज्ञान के मतानुसार वायु हल्की होकर ऊपर को उठती है, और अपना प्रथम स्थान छोड़ देती है, तो इधर-उधर की चारों ओर की भारी और ठंडी हवा हल्की हवा की खाली जगह घेर लेती है, अर्थात चारों ओर की हवा पहली हवा के हल्का होकर उड़ जाने पर एक-एक श्रेणी अपने आप उन्नति करती जाती है, इस प्रकार एक महात्मा के ब्रह्मनिष्ठ होने अर्थात् अपने असली रूप में लीन हो जाने पर उपरिवर्णित वायु की भांति शेष चारों

वर्णों के लोग बिना किसी प्रकार की इच्छा और प्रयत्न के महात्मा की खाली की हुई जगह को घेरने के लिये अपने अपने दर्जों से एक-एक दर्जा अपने आप उन्नति कर जाते हैं। अतएव अपने आपको अपने स्वरूप में लीन करना अर्थात निज स्वरूप में निमग्न होना ही परोपकार करना है। तात्पर्य यह है कि आपके मन का अपने सूर्य रूपी आत्मा की किरणों के द्वारा अहंकार रूपी भारी बोझ से शून्य और हलका होकर अपने स्वरुप में उड़ जाना, अर्थात् लीन हो जाना ही संसार के और पुरुषों का सुधारना है, नहीं तो सुधारक महाशय या सुधार के इच्छुक जितना ही अपने वास्तविक स्वरूप से नीचे रहेंगे, उतना ही शेष मनुष्य निचले दर्जों पर रहेंगे और परोपकार करने के अर्थ का मिथ्या वरन् उल्टा व्यवहार करते रहेंगे; क्योंकि अपने स्वरूप में अवस्थान न करना ही दूसरों का परोपकार न करना है. वरन् अपने आपको नीचे गिराये रखना है। इसीलिये ऐ सुधार के इच्छुकों! और ऐ संसार का उद्धार करने वालो! यदि संसार का उद्धार करना चाहते हो, तो उठो, अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, शेष सब लोग अपने आप उन्नति कर लेंगे, या यों कहो कि शेष सब लोगों का बिना आपकी इच्छा और प्रयत्न के अपने आप भला हो जायगा; और आप में भी जब अपने स्वरूप में निष्ठा होगी, तो सारे संसार को हिला देने की शक्ति आ जायगी, अर्थात अनन्त स्वरूप से भेद होने के कारण अनन्त शक्ति भी आप में भर जायगी। इस प्रकार आपका केवल राजगद्दी सम्भालना ही सारे काम-धन्धे को ठीक कर देना है, क्योंकि बिना असली साम्राट् के सिंहासन पर स्थित हुए साम्राज्य के काम पूरे नहीं होते, अतः अपने स्वरुप में लीन होना परोपकार के लिए मुख्य उपाय समझना चाहिये, अपने अनन्त स्वरूप से मन को अभेद करने से ही अनन्त शक्तियां प्राप्त होंगी। जैसे एक नमक की डली यदि खाली गिलास में डाली जाय, तो एक परिच्छिन्न स्थान घेरती है, और जब पानी से भरे हुये गिलास में डाली जाय; तो पानी में घुल जाने से (अर्थात् जल के साथ मिल जाने से) वह डली अपनी परिच्छिन्न जगह छोड़कर गिलास के समस्त पानी में फैल जाती है और समस्तजल में नमकीन स्वाद देने की शक्ति रखती है, या यों कहा जाय कि जितना ही नमक की डली अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़ती जाती है, और पानी में समाती जाती है, उसमें उतना ही स्वाद फैलाने की शक्ति बढती जाती है; इसी प्रकार मन यद्यपि परिछिन्न शक्ति का खंड माना गया है, किन्तु जितना ही वह अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़कर अपने स्वरूप के अनन्त सागर से अभेद होता है, उतनी ही उसकी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियां फैलती भी दिखाई देती है, अर्थात् उतना ही मन अपरिच्छिन्न शक्तियां प्रकट करने का बल उत्पन्न करता चला जाता है। इसी प्रकार से भगवन्! यदि आप अपनी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियां प्रकट किया चाहते हैं, तो मन को कैवल्य-

स्वरुप में इस प्रकार लीन कर दो कि जैसे मजनूं के प्रेम के सम्बन्ध में एक कवि ने कहा है —

खूं-रगे मजनूं से निकला फस्द लैला की जो ली ;
इश्क में तासीर है पर जज्बे-कामिल चाहिये ।

अर्थात मजनूं लैला के साथ अभेद हुआ था कि लैला और मजनूं में बिलकुल अन्तर न रहा, वरन् लैला की फस्द लेने पर भी खून मजनूं की नस से निकला । जितना ही आप अपने को परिच्छिन्न करते जाओगे, अर्थात् नमक की डली की भांति परिमित शरीर में मन को घेरे रक्खोगे, उतना ही आप अपने को असमर्थ और शक्ति-हीन बनाते जाओगे । अतः मन को शरीर के ख्याल से दूर हटाकर आनन्दघन रूपी समुद्र में लीन करना ही समस्त अनन्त शक्तियां प्राप्त कर लेना है। जब इसी प्रकार से व्याव-हारिक रीति पर मनुष्य तन्मय (यूयं वयं, वयं यूयं) हो जाता है, अर्थात् जिस समय वेदांत-रूप हो जाता है, तो पूर्व संकल्प नमक की डली की तरह परिमित स्थान को छोड़कर अपने अनन्त स्वरूप में समा जाते हैं, और इस प्रकार सबके साथ अभेद और प्रेममय होने पर समस्त मनो-कामनाएं बिना इच्छा और प्रयत्न के पूरी हो जाती है । अपने आत्मा में लीन होने के लिये सुधारक महाशय को पहली आवश्यकता हृदय-रुपी पर्दे को ज्ञान-रुपी तेल से तर करने और स्वच्छ बनाने की है । जैसे कागज की तह यदि लैम्प का लाट के आगे रक्खी जाय, तो लाट इतना प्रकाश नहीं करता जितना तेल में भिगोई हुई कागज की तह कर सकती है । (अर्थात कागज की तह बिना तेल से भिगो के अच्छी तरह दीपक का प्रकाश प्रकट नहीं कर सकती, क्योंकि तेल के साथ भिगोने से इसकी तह स्वच्छ और हल्की हो जाती है) इस तरह हृदय को ज्ञान रुपी तेल से भिगोये बिना आत्म-रुपी ज्योति का प्रकाश बाहर भली-भांति प्रकट नहीं हो सकता । अतः ज्योति को प्रकट करने के निमित्त हृदय-रुपी पर्दे को ज्ञान-रुपी तेल से तर करने और उससे उसको स्वच्छ बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है ।

(क्रमशः)

★ शक्तिदायी विचार ★

शैतान तो उसी दिन मर गया जिस दिन तुम जन्मे थे । अब तुम्हें देवताओं के दर्शन के लिये नर्क से गुजरने की आवश्यकता है ।

— — —

जो प्रेम नित नया नहीं होता रहता, वह एक आदत का रूप धारण कर लेता है और फिर बन्धन बन जाता है ।

—खलील जिब्रान

गुरु पूर्णिमा के शुभ व पावन अवसर पर:–

अपने कठोर परिश्रम से शुष्क और सख्त भूमि को कृषि योग्य, उत्पादन योग्य बनाने वाला कृषक जब बीजों को उस खेत में बिखेर कर ऊपर से पाटा चलाने की प्रक्रिया अपनी मस्ती में किसी अलौकिक आशा से अभिप्रेरित होकर करता है तब पास खड़े व्यक्ति को आश्चर्य होता है । उसकी समझ में किसान का यह कार्य, जिसमें वह अपनी बची समस्त निधि को मिट्टी में मिला रहा है, नहीं आता । फलस्वरूप व्यंग से भरी हंसी की रेखा उसके ओठों पर होती है साथ ही होती है अन्दर के उपेक्षा भाव की झलक व्यक्तित्व के दर्पण मुख पर । पर, वह कृषक मस्त है अपनी मस्ती में बिखेरे जा रहा है अपना सर्वस्व । अवसाद, दुःख और अशांति सम्भव है कि कृषि के दैविक प्रकोपों की सम्भावना को लेकर उसके हृदय में होता है पर आशा-बन्धन में वह उसे भूला देता है । समय बीतता है आखिर वह समय आ जाता है जब उसका फल, उसके परिश्रम का फल जो अब तक अदृष्ट था, दृश्य बनकर उपस्थित होता है । नाच उठता है खुशी से, गाता है गीत आनन्द के और उसमें वे सारे प्रकोप, जिनकी मन में मात्र एक तरंग उसे भय से कम्पित कर देती है, उससे बहुत दूर होते हैं ।

इस दृष्टान्त में कृषक, किसान के विषय में हमें तीन जानकारियां मिलती हैं । तीन वे गुण उसमें हैं जिनके कारण वह दूसरों की हंसी की परवाह किये बिना, यह चिन्ता किए बिना कि आपत्तियों से उसका परिश्रम विफल न हो जाये, आशा की किरण लिए धैर्य्य पूर्वक अपने कार्य के परिणाम की प्रतीक्षा करता है । यही है जीवन । इसी दृष्टांत में कहीं छिपी है आध्यात्मिक साधक के लिये उपदेश की मूक भावना । इस प्रतीक्षा, इस धैर्य्य, कठोर परिश्रम, के कारणभूत, अशरीरी पर शरीरधारी आत्मज्योति से युक्त, जिसने अनुभूति और व्यवहार दोनों स्तरों पर उस तत्व को अच्छी तरह जान लिया है, जिसे अनेक साधनों का साध्य-रूप विद्वज्जन स्वीकार करते हैं, दीखने में सामान्य पर अलौकिक, व्यक्ति को ही शास्त्र "गुरु" इस अपने अन्तर में गुह्य पर महान भाव को लिए शब्द से संज्ञित करते हैं ।

आज हम गुरुपूर्णिमा के रूप में पूर्णचन्द्रवत् शान्त व सम्पूर्णकलाओं से युक्त ज्ञानरूप गुरु को श्रद्धा के सुमन समर्पित करते हुए उत्सव मना रहे हैं । भारतीय संस्कृति की परम्परा में पर्वों, त्योहारों का जहाँ व्यावहारिक सन्दर्भ में कोई स्थूल अर्थ है वहीं वह जीवन के उच्च आदर्शों को प्राप्त कराने वाली सीढियों के रूप में अपना सांस्कृतिक व आध्यात्मिक अर्थ भी रखते हैं ।

व्यक्तिगत, सामाजिक, आध्यात्मिक जीवनों की सत्यता में क्योंकि अन्तर जातिगत नहीं है इसीलिए पर्वों की व्याख्या इन उपरिलिखित सभी प्रकारों से की जा सकती है और की जाती है।

प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार नवशिक्षा सत्र आज पूर्णिमा के पावन दिवस से ही प्रारम्भ होता था इसीलिये इसे सामूहिक रूप से विद्याध्ययन के लिये ऋषिकुलों व गुरुकुलों में आये विद्यार्थियों द्वारा मनाया जाता था। गुरुपूजन करने के बाद शिष्य द्वारा अध्ययन व शुभाशीष के अनन्तर गुरु द्वारा अध्यापन कार्य प्रारम्भ होता था। क्योंकि विद्याध्ययन का सम्बन्ध व्यक्तिगत, सामाजिक व सांस्कृतिक इन तीनों पक्षों के साथ होता है इसलिए इन तीनों ही दृष्टियों से आज का शुभ—गुरुपूर्णिमा—उत्सव अपनी महत्ता रखता है, महत्वपूर्ण माना जाता है।

मुख्यतया जब हम भारतीय साहित्य के मौलिक सिद्धांत रूप विभिन्न दर्शनों, पुराणों, उपनिषदों व धर्मशास्त्रों को देखते हैं तो पाते हैं कि वे सब अधिकतया गुरु-शिष्य के संवाद, प्रश्नोत्तरों के रूप में हैं। इनमें कठिन विषयों पर, जो स्थूल तथा देखने योग्य नहीं हैं, तो हमें इस प्रकार की परिचर्चा ही दिखाई देगी। सर्व साधारणवेद्यदृष्टान्त हैं, महाभारत, गीता, उपनिषद, श्रीमद्भागवत आदि। अर्थात् इन ग्रन्थों में है शिष्य के प्रश्न और गुरु के उत्तर। शिष्य की शंका है तो गुरु का समाधान। यहां पर विद्वानों के श्रीमद्भगवत्गीता विषयक विचार का उल्लेख करना उचित ही होगा। कुछ विद्वानों के अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता का प्रारम्भ समाधान व उत्तर के रूप में नहीं हुआ है, बल्कि वहां करुणा है, जो शिष्य की करुण दशा को देखकर गुरु के अन्तर में हुई। यही करुणा मूलस्रोत है श्रीमद्भगवद्गीता का।

सामान्यतया देखा जाता है कि संसार की क्षणिकता का अनुभव परोक्षतया कर लेने के बाद शिष्य सत् साधनवेत्ता श्रोत्रीय व ब्रह्मनिष्ठ गुरु का अन्वेषण प्रारम्भ करता है। जिज्ञासु की तड़प सत्य की ओर जितनी बढ़ती जाती है उतना ही वह गुरु-प्राप्ति के समीप पहुंचता जाता है लेकिन कभी-२ एक अन्य सिद्धांत को देखने का अवसर भी मिलता है जहां हम पाते हैं कि महापुरुष शिष्य का अन्वेषण कर रहा है। वास्तव में खोज दोनों को होती है क्योंकि एक दूसरे के बिना दोनों अधूरे हैं।

जीवन में सम्बन्धों के अन्तर में निहित कारणों को सांस्कृतिक, सामाजिक व स्वाभाविक रुपों में बांटा जा सकता है। इस आधार पर गुरुशिष्य सम्बन्ध में यदि कारण ढूंढा जाय तो यह (सम्बन्ध) इन सबसे अलग हटकर विशुद्ध आध्यात्मिक कारण से अभिप्रेरित है। इस सम्बन्ध में बाह्य अपेक्षाएं आयु, विद्या आदि बिल्कुल समाप्त हो जाती है। कहीं पुत्र पिता को आसक्ति

को खत्म कर ममता रहित होने का ज्ञान शुकदेव के रूप में देता है, कहीं निर्गुण निराकार मर्यादा पुरुषोत्तम राम को वशिष्ठ के रूप में भक्त आत्मतत्व की सत्यता व जगत् के त्रिकालाभाव की बात बताता है और कहीं अल्पायु अष्टावक्र पण्डितों को धर्मकार के रूप घोषित करते हुए—जनक के विदेहत्व का कारण बनता है।

यहां हमें एक बात और समझनी पड़ेगी कि गुरू का स्थान साधना में सकेतिका के रूप में होता है। यदि शिष्य सारा मुक्त कराने का हेतु मात्र गुरु को मान कर संसारासक्त रहेगा तो गुरू की वाणी की सेवा न करने के कारण व गुरु वाक्यों को व्यावहारिक रूप न देने के फलस्वरूप स्व लक्ष्य की प्राप्ति न कर सकेगा। क्योंकि कहा गया है-शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव- शिष्य कौन है? जो गुरु का ही भक्त है। जो गुरु की ही सेवा करता है। उसकी बातों की,उसके उपदेशों की मात्र प्रशंसा ही नहीं करता अपितु उसे जीवन में भी उतारता है।

इसी गुरुपूर्णिमा के शुभ दिवस को व्यासपूर्णिमा नाम से भी कहा व सुना जाता है। भारतीय संस्कृति के आधारभूत वेदों को क्रमबद्ध करने के कारण, सुव्यवस्थित करने के कारण व्यास यह नाम दिया गया। और इसी नाम से वह आज जाने जाते हैं। बादारायण आदि विभिन्न नामों से संज्ञित होने के कारण अष्टादश पुराण के रचियता व्यास की अनेकता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। परन्तु तब भी व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्, व्यासस्य वचन द्वयम् आदि द्वारा व्यास के एकत्व की सिद्धि ही होती है। ब्रह्मसूत्र, महाभारत, अष्टादश पुराणों के रचियता व भारतीय संस्कृति के संरक्षक, प्रकाशक व व्याख्याता को जगद्गुरु के रूप में मानकर हम उनके श्री चरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्व सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।

की शुभकामना करते हैं।

—निर्द्वन्द्व

❀ दृष्टिकोण ❀

★ सरिये को हथौड़े से पीटकर उसकी शक्ति का परिमाण निकाला जाता है और मनुष्य का कठिनाईयों में।

★ जब तक लोहा पूरी तरह गरम नहीं होता, उसका आकार नहीं बदलता। जब तक साधक में साधना की सम्पन्नता नहीं आती तब तक वह नहीं निखरता।

★ ताम्बा जितना शुद्ध होता है उतना ही उसका प्रवाहकत्व (Conductivity) अधिक होता है। मनुष्य का अन्तःकरण जितना शुद्ध होता है उतना ही वह आध्यात्मविद्या का अधिकारी होता है।

सम्पादकीय

व्यवहार, अध्यात्म का समन्वय करने वाले भारतीय तत्ववेत्ता ऋषियों ने आत्मसंयम व आत्मावलोकन के द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर जो निधि विश्व को ज्ञानस्रोत वेद, उपनिषद्, पुराण, आगम, निगमादि शास्त्रों द्वारा दी है उसके लिए मानव-समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा। बीच-२ में बाहरी आक्रमणों के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा मानों वह निधि हमारे हाथ से छीनकर समाप्त कर दी जायगी और इसी ही उद्देश्य को लेकर विदेशी शासकों, आक्रमणकारी लुटेरों ने कोई कसर न रखी। पर, वट वृक्ष के समान फैले अपने मूल से युक्त वह दृष्टिकोण (समन्वयवादी) आज भी हमारे समक्ष अपने सनातनत्व की घोषणा करता हुआ परोक्ष या अपरोक्षतया व्यवहार को प्रभावित कर रहा है।

धर्मग्लानि काल में तद्रक्षा हेतु, साधुजनों के परित्राणार्थ व दुष्कर्मियों के विनाशार्थ अवतारवाद के अनुसार निर्गुण ब्रह्म साकार होकर अवतरित होता है यह मान्यता है। बाद में उसी आदर्श पुरुष के गुणों का गान सन्तों द्वारा किया जाता है, जिसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का सरलनिरूपण, सामाजिकव्यावहारिकता के साथ अध्यात्म का स्पष्ट सम्बन्ध व उसका समन्वय हमें दीखने को मिलता है। ऐसे ही सन्तों में बाल्मीकि रामायण के मर्यादा पुरुषोत्तम राम को मायापति के रूप में मात्र लीला हेतु, भक्तों के शापवश व उन पर अनुग्रह करने वाले के रूप में चित्रित करते हुए सामाजिक, क्रान्तिदर्शी के रूप में परान्तःसुखाय के उद्देश्य से प्रेरित हो की जाने वाली रचनाओं के मध्य स्वान्तःसुखाय की उद्घोषणा करने वाले समन्वयवादी तुलसी का स्थान शशिवत् शान्तप्रकाश युक्त व सर्वोपरि है। यद्यपि उस महान दार्शनिक, क्रान्तिकारी को आधुनिक कुछ तथाकथित पाश्चात्यचिन्तन से प्रभावित मात्र छिद्रान्वेषी दृष्टियुक्त आलोचकों ने समाजपथ भ्रष्टकत्व-का आरोप लगाकर कलंकित करने का प्रयास किया है, जो उनकी व्याकरण की अबोधता को तो प्रकट करता ही है साथ ही इस ओर भी संकेत करता है कि वे, सम्भवतया, यह नहीं जानते कि चन्द्र का कलक तो मात्र प्रति-

बिम्ब है दृष्टा के धरातल का ।

तुष्यतु दुर्जन न्याय को समक्ष रखते हुए भी—करन चहहुं रघुपति गुन-गाहा—द्वारा तुलसी ने स्पष्टतया अपने उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए स्वींकार किया है—लघु मति मोरि चरित अवगाहा । इस पर भी जो उसके भावों की मात्र उपेक्षा व विवेचना करने वाले व्यक्ति है—जे पर दूषन भूषनधारी—उनके लिए साफ २ शब्दों का प्रयोग तुलसी ने किया है—हंसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी ।

राम-कथा क्यों ? इसका उतर, स्वान्तस्तमः शान्तये, मोरे मन प्रबोध जेहि होई, रामकथा कलिकलुष विभजिनी, द्वारा स्पष्ट है ।

यह तो हुई विवेचनात्मक दृष्टि जिससे आलोचकों को उनके धरा-तल का ज्ञान हो जाये, पर, साथ ही सूक्ष्म दृष्टि से यदि उनके कृतियों-के-चरित्रों को देखा जाये तो हमें उनमें हर स्थान पर मर्यादा को समक्ष रखते हुये जीवन के प्रति सदैव स्वीकारात्मक दृष्टिकोण ही मिलेगा । कोई भी ऐसा चरित्र नहीं है जो कर्तृत्व के अभिमान से युक्त हो ।

सच्चे साहित्यकार के रूप में—सर्वे भवन्तु सुखिनः—की धारणा को समक्ष रखते हुए ही जाति, सम्प्रदाय, धर्म आदि से ऊपर, साहित्य की परिभाषा तुलसी ने इस प्रकार की—

कीरति भनिति-भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कर हित होई ।

समाज सुधारक के रूप में हम तुलसी को पाते हैं जब वह वैष्णवों और शैवों के झगड़ों के लिए स्पष्ट समाधान देते हुए कहते हैं—शिवद्रोही ममदास-कहावा, सो नर मोहि सपनेहुं नहिं पावा । रावण का चरित्र इसके लिए अच्छा उदाहरण है—राम विमुख अस हाल तुम्हारा, रहा न कोऊ कुल रोवनिहारा ।

भाषा की कठिनता को दृष्टिगत करते हुए सरल और दैनिक भाषा में राम-

चरित्र को रखने के साथ ही प्रकृति का माध्यम लेते हुये तुलसी ने व्यावहारिक सत्यों की ओर—दामिनी दमक रही घन माहीं, खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।

बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे, खल के वचन सन्त सहैं जैसे।

इस प्रकार संकेत किया है।

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं— द्वारा जहां वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त का हमें दर्शन होता है वहीं अवतारवाद व भक्ति के सिद्धांतों के अनुसार ही सगुण और निर्गुण भक्ति के अन्तर और रूप का भी ज्ञान प्राप्त होता। राज-धर्म, गृहस्थ-धर्म, भ्रातृ प्रेम आदि कोई भी भावना ऐसी नहीं जो इनकी कृतियों में न हों। तुलसी की कल्पना में दूरदर्शिता के साथ ही अलौकिकता है तथा कहीं पर भी जीवन के यथार्थ धरातल की उसने उपेक्षा नहीं की है।

ऐसे महान युगपुरुष को यदि हम मात्र अपने तुच्छ स्वार्थों के कारण अपनी निषेधात्मक विवेचना का विषय बनायें तो यह उपयुक्त न होगा क्योंकि निन्दायुक्त आलोचना सत्यता को नहीं हटा पाती और न ही ग्राम सिंहों के भय से मदमस्त गज अपने आनन्द को भुला मार्ग छोड़ देता है।

शोक समाचार

समस्त रामप्रेमियों को सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि धर्मनिष्ठ श्री श्रीराम मरवाह के सुपुत्र श्री ओमप्रकाश मरवाह का निधन, दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण, दिनांक १-८-७७ को हो गया है।

राम दरबार गत जीवात्मा की शान्ति की प्रार्थना परमात्मा के श्री चरणों में करता है। तथा यह कामना करता है कि शोक सन्तप्त परिवार आत्मीयजन के वियोगरूपी दुःख को धैर्यपूर्वक सहन कर सकें।

—सह सम्पादक

दर्शनशास्त्र का स्वरूप

डा० अभेदानन्द
अध्यक्ष—दर्शनविभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

(गतांक से आगे)

उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हुआ कि भारतीयदर्शन का सम्बन्ध भौतिक समस्याओं के समाधान से उतना नहीं, जितना कि आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान से है। किन्तु आज कल प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन का नाम लिया जाता है, अतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारे दर्शन की आधुनिक परिभाषा क्या है ? जिससे कि दर्शन कहने से उनका यथार्थभाव और अर्थ हमारे सामने प्रकट हो सके। संसार के सभी ज्ञात तथा अज्ञात विषय दर्शन की परिधि के अन्तर्गत है। अतः इसकी सवमान्य परिभाषा तो कठिन है, इसके अतिरिक्त संसार के विभिन्न दार्शनिकों ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। कोई भौतिकवादी है, तो कोई अध्यात्मवादी । इस तरह विषय-वस्तु की भिन्नता के कारण इसकी परिभाषा भी भिन्न-भिन्न हो सकती है। कोई इसे विज्ञान बतलाता है, तो कोई इसे प्रमाणशास्त्र। इससे स्पष्ट है कि दर्शन की परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में एक धारणा नहीं पाई जा सकती। फिर भी एक परिभाषा ऐसी है कि जिसे अधिकांश विद्वान स्वीकार करते हैं और जो वास्तव में यथार्थ भी प्रतीत होती है । वह यह कि "दर्शनशास्त्र यथार्थता के स्वरूप का तार्किक ज्ञान है" । डा० राधाकृष्णन् आदि विद्वान् भी इसी परिभाषा को मानते हैं । इस परिभाषा के अनुसार स्पष्ट है कि दर्शन युक्तिपूर्वक यथार्थ तत्व के अन्वेषण का प्रयास करना है अथवा यथार्थता के स्वरूप का तार्किक अन्वेषण करना । इस संक्षिप्त परिभाषा का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि दर्शनशास्त्र के सभी प्रतिपाद्य विषय इस परिभाषा से गतार्थ हो जाते हैं। इस परिभाषा के अन्तगत दो पद महत्वपूर्ण हैं। एक तो तार्किक ज्ञान (Logical Inquiry) इसे ही ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) या प्रमाणमीमांसा भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि हम किसी भी विषय को तर्क या युक्ति के आधार पर ही स्वीकार कर सकते हैं । दर्शनशास्त्र यथार्थ तत्व का तार्किक निर्णय करता है अर्थात् वह प्रमाण के द्वारा यह निश्चय करता है कि तत्व का स्वरूप और लक्षण क्या होना चाहिए । इससे स्पष्ट है कि प्रमाण दर्शन का मुख्य साधन है । यही कारण है कि सभी भारतीय दार्शनिकों ने प्रमाण-मीमांसा के ऊपर बड़ा बल दिया है । योरोपीय दार्शनिक भी ज्ञान के स्वरूप, विकास एवं शक्ति पर विचार करते हैं । उनके अनुसार ज्ञान बुद्धि-जन्य है या अनुभव-जन्य ? बुद्धि की पहुँच कहाँ तक है ? क्या तत्व का निरूपण बुद्धि से सम्भव है? ये सभी

प्रश्न ज्ञानमीमांसा के अन्तर्गत आ जाते हैं।

परिभाषा में दूसरा पद है 'यथार्थ का स्वरूप' (Nature of reality) इसे ही तत्वमीमांसा कहते हैं, जिसमें कि विश्व-प्रपञ्च की व्याख्या की जाती है। इस प्रकार हमने देखा कि दर्शनशास्त्र को दो शाखायें हैं—१- तत्वमीमांसा (Ontology) और २-ज्ञानमीमांसा (Epistemology)। इसमें भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार तत्वमीमांसा दर्शन का साध्य है और उसका साधन है—ज्ञानमीमांसा। परन्तु कतिपय आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक ऐसे हैं, जो ज्ञानमीमांसा को ही साध्य मानते हैं। जो भी हो, तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा दोनों परस्पर-सापेक्ष हैं। ज्ञानमीमांसा के बिना तत्वमीमांसा की और तत्वमीमांसा के बिना ज्ञानमीमांसा की सार्थकता संभव नहीं है। दर्शनशास्त्र में ज्ञानमीमांसा के स्थान को जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि ज्ञानमीमासा या प्रमाणमीमांसा किसे कहते हैं? प्रमाणमीमांसा का सम्बन्ध ज्ञान विषयक तथा तत्सम्बन्धित प्रमाण विषयक प्रश्नों से है। ज्ञान की उत्पत्ति, स्वरूप, प्रामाण्य, उसकी सीमा तथा ज्ञान और विषय का सम्बन्ध एवं ज्ञान की सत्यता की कसौटी, आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में ज्ञानमीमांसा विचार करती है। अभिप्राय यह है कि ज्ञानमीमांसा मानवीय ज्ञान की उत्पत्ति (Origin), स्वभाव (Nature) तथा सीमा के सम्बन्ध में विचार करती है। पाश्चात्य दर्शन में सर्वप्रथम ज्ञानमीमांसा को महत्व देने का श्रेय लॉक को है। इससे पूर्व इस विषय पर पाश्चात्य दर्शन में कोई शृङ्खलाबद्ध विचार नहीं किया गया, जैसा कि भारतीय दर्शन में हम पाते हैं। ज्ञानमीमांसामूलक विचारों का चरम उत्कर्ष पाश्चात्य दर्शन में हम काण्ट के दर्शन में पाते हैं।

संक्षेप में हमने यह विचार किया कि दर्शनशास्त्र का स्वरूप क्या है? यह भी स्पष्ट हो गया कि तत्वमीमांसा का स्वरूप क्या है? तत्वमीमांसा का कार्य तत्व के स्वरूप का विवेचन है और ज्ञानमीमांसा का कार्य ज्ञान की उत्पत्ति, प्रामाणिकता एवं सीमा पर विचार करना है। दार्शनिक ज्ञान के लिये ज्ञानमीमांसा और तत्वमीमांसा दोनों शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है। जिन दार्शनिकों ने ज्ञानमीमांसा शास्त्र पर बल दिया है, वे भी ज्ञानसम्बन्धी समस्याओं के समाधान द्वारा निर्भ्रान्त ज्ञान के माध्यम से तत्वमीमांसीय समस्याओं का समाधान करना चाहते हैं।

भारतीय दर्शनों में न्यायदर्शन में प्रमाणों के स्वरूप तथा सीमा के विषय में, अतिविस्तृत विचार मिलता है। ऐसा करके न्याय-दार्शनिकगण भी आत्म-अनात्मविचार द्वारा निश्रेयसाधिगम कराने का दावा करते हैं अर्थात् न्याय दर्शन भी लक्ष्य की दृष्टि से तत्वमीमांसाशास्त्र है, भले ही आपाततः यह विशुद्ध प्रमाणशास्त्र लगता हो।

चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दार्श–

निक दार्शनिक विचार का लक्ष्य आत्म-अनात्म-विवेक को स्वीकार करते हैं। जो ईश्वरवादी दार्शनिक हैं, वे आत्म-अनात्मविवेक द्वारा आत्मा का अनात्मा से पृथक् ज्ञान कराकर उसे परमात्मा से सम्बन्धित कर देते हैं। अद्वैतब्रह्मवाद आत्मा को परमात्मा या ब्रह्म से अभिन्न सिद्ध करता है।

अनीश्वरवादी दार्शनिक जैन और बौद्धगण आत्मा के सम्बन्ध में कुछ भिन्न विचार रखते हैं। बौद्धगण अनात्म-चिन्तन द्वारा अहन्तादि भावना से निर्वाणदशा की प्राप्ति की बात करते हैं। जैन दार्शनिकगण आत्मा को पुद्गलों से मुक्त करके स्व-स्वरूप प्राप्ति को ही दार्शनिक परिणति मानते हैं।

चार्वाक दार्शनिक के विचार इन सभी दार्शनिकों से अधिक क्रान्तकारी हैं। वे दार्शनिक ज्ञान से इह लोक में ही सुखानुसन्धान तथा दुःखनिवृत्ति की बात करके दर्शनशास्त्र के लौकिक विद्या होने की घोषणा करते हैं। इस प्रकार हमने देखा कि अपने विभिन्न विचार एवं सिद्धान्त के कारण भारतीय दर्शन-साहित्य अतिसमृद्ध है। एक जर्मन दार्शनिक के शब्दों में 'भारतीय दर्शन एक गहरा समुद्र है, जिसका पार पाना कठिन है। विश्व में ऐसा कोई साहित्य नहीं, जिसकी तुलना भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक साहित्य से की जाय'।

—समाप्त—

राम-हृदय

जो मुक्त है सारी प्रकृति उसकी वन्दना करती है, सारा विश्व उसके सामने सिर झुकाता है। मैं मुक्त हूं, आप मुक्त हैं, । चाहे आज यह माना जाय या नहीं, पर वह एक निष्ठुर सत्य है, देर या सवेर इसे सब लोगों को अनुभव करना पड़ेगा।

० ० ०

अपने सिवा और किसी के प्रति आप उत्तरदायी नहीं। आप अपने प्रति घोर अपराध करेंगे, यदि आप सुख और शान्ति का यह सबसे पवित्र नियम भंग करेंगे।

० ० ०

ओ३म्, अ उ म्, मन्त्र का पहला अक्षर अ उस अक्षय तत्व, परमात्मतत्व का प्रतिपादन करता है जो जाग्रत अवस्था के मायिक और भौतिक जगत् को प्रकाशित करता हुआ अधिष्ठान रूप से स्थित है। उ अक्षर मानसिक जगत् का प्रतिपादन करता है और अन्तिम अक्षर म् उस परब्रह्म का प्रतिपादन करता है, जो अन्धकारमय अवस्था में भी अपने को अज्ञात रूप से प्रकाशित करता रहता है।

—स्वामी सार शब्दानन्द जी महाराज

तृतीय भक्ति :

गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान ।

भगवान् श्री राम मर्यादा के पुंज शबरी से गुरु चरणों की सेवा अमान अर्थात मान रहित होकर करना यह तीसरी भक्ति बताते हैं। अमान से क्या तात्पर्य है ? क्या सेवा मान रखकर भी हो सकती है ? शास्त्र कहते हैं कि मानी पुरुष अपना मान पाने के लिए ही सेवा करता है कि अन्य व्यक्ति यह जान लें कि मैं साधारण व्यक्ति नहीं हूँ, मैं तो इतनी सेवा कर सकता हूँ, परन्तु अभिमानी को यह ध्यान नहीं रहता कि सेवा करने वाला तो सेवक होता है और सेवा नम्रता से सम्बन्ध रखती है । चाहे अनेक सेवा करते रहें, यदि तनिक अभिमान आया तो किया-कराया सब निष्फल । इसलिए मान रहित सेवा करने का संकेत है। मान सहित सेवा करने का उदाहरण गरुड़ जी की वह शंका है कि जो रावण-राम संग्राम में सेवा करते समय उनके हृदय में उत्पन्न हुई । भगवान् राम ने नरलीला करते हुए अपने को नागपाश में बांध दिखाया । सेवक को सेवा देने की कृपा की—

पुनि-पुनि सत्य कहउं तोहि पाहीं,
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही ।

जैसे गुरु वाक्य —

सेवक को सेवा बन आई, हुक्म बूझ परम पद पाई।

आज्ञा को समझना ही सेवक का परम धर्म है । आज्ञा के भेद को न समझ कर स्वयं को कर्त्ता मान लेता है और अपने कर्म अहंकार के वश होकर भ्रम चक्कर में ठोकरें खाता है भगवान् राम को नाग पाश में मेघनाद ने जब बांधा तब नारद जी वैकुण्ठ में गए । वहां गरुड जी को कहा—"तेरे स्वामी राम पर अति विपत्ति आ पड़ी है। वह सेना सहित लंका के निकट नाग पाश में बंधे पड़े हैंऔर मूर्छित हो रहे हैं।" नारद जी के वचन सुनते ही गरुड़ जी संकल्प करते ही भगवान राम तक जा पहुंचे । गरुड़ को देखते ही सर्प भाग गये । भगवान राम ने बन्धन मुक्त होकर आशीर्वाद दी । तब गरुड़ जी के मन में यह शंका उत्पन्न हो गई कि यह कोई

साधारण पुरुष है, भगवान् नहीं। यदि भगवान् होते तो नागों की स्वयं रचना करने वाले भला नाग-पाश में किस प्रकार बंधते, यदि मैं न आता तो यह किस प्रकार बन्धन रहित होते। जिनको सेवक ही निरबन्ध कर सकता है, भला यह भगवान् कैसे? भगवान के सगुण चरित्र को न जान सके—

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन न जाने कोई।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होई।

निर्गुण को जानना सुलभ है इसलिए महादेव जी पार्वती जी के प्रति कहने लगे कि सगुण को जानना कठिन है। जो गुणातीत है, जिसको किसी गुण का आधार नहीं। इसलिये भगवान् सगुण के सुगम अगम अनेक चरित्रों को सुनकर मुनियों के मन में भ्रम हो जाता है। भला गरुड़ वहां क्या करते? गरुड़ जी कहने लगे—

भव बन्धन ते छूटहिं, नर जप जाकर नाम।
खरब निशाचर बाँध्यो, नाग पाश सोई राम॥

भला जिसका नाम जपने से मनुष्य अनेक सांसारिक बन्धनों से छूट जाता है उसी राम को तुच्छ राक्षस ने नागपाश में बांध लिया? इस प्रकार अनेक संशय मन में रखकर गरुड़ जी नारद जी के पास गये। और नारद जी से सारा वृत्तांत कहा। तब नारद जी भगवान् की माया से भयभीत हुये 'श्री राम श्री राम' जापकर आगे बढ़े और गरुड़ को ब्रह्मा जी के पास भेज दिया। ब्रह्मा जी सारा हाल सुनकर सोचने लगे और कहा—"ऐ गरुड़ जी! माना कि मैं समस्त संसार का रचियता हूं, परन्तु जब मैं ही माया में आ जाता हूँ तो आपको संशय होना कोई बड़ी बात नहीं। इसमें आश्चर्य ही कैसा? आप शंकर जी के पास गये। उस समय महादेव जी कुबेर जी के पास जा रहे थे। भगवान् शिव उमा को कहने लगे—"आप उस समय कैलाश पर्वत पर थे और मैं कुबेर-गृह जा रहा था जबकि गरुड़ जी मुझे मार्ग में मिले। तब मैंने गरुड़ को इस प्रकार कहा कि आप मुझे मार्ग में मिले हो, मैं आपको किस प्रकार समझाऊंगा?"

मिलेहु गरुड़ मारग मह मोही, कवन भांति समझावों तोही।
तबहि होइ सब संशय भंगा, जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

"ऐ गरुड़ जी! आप मुझे मार्ग में मिले हो। मैं आपको नहीं समझा सकता आप काकभुशुन्डि जी के पास जाओ। वहाँ अनेक प्रकार से भगवान् के चरित्र का गान किया जा रहा है और पक्षी, पक्षी की भाषा को भली भांति समझता है। इसलिये वहां आपका शंका समाधान हो जायेगा"। भगवान महादेव जी उमा के प्रति कहते हैं— "हे उमा! मैंने उसे अभिमानी जानकर नीच काक के पास भेजा था कि वहाँ जाने से उसका मान-मर्दन हो जाये और निरमान होकर ही भगवान्

के रहस्य को जानेगा। समझाने को मैं भी समझा सकता था, परन्तु यह विचार किया कि इसने किसी समय भारी अहंकार किया होगा जिसके लिए यह सारी रचना रची गई है। पक्षीराज गरुड़ जी को मैंने नीच जाति काकभुशुण्डि जी के पास भेजा। काकभुशुन्डि भगवान् के अनन्य प्रेमी तथा पूर्ण भक्त हैं, परन्तु काक का शरीर धारण कर राम भक्ति में लीन हैं। गरुड़ जी का शंका समाधान वहीं से हुआ।" काकभुशुण्डि जी ने अनेक प्रकार से समझाया। वहां जाते ही आवरण दूर होने लगा। भ्रम ही आवरण था। अपनत्व ही माया थी। देहाभिमानी सेवा करता हुआ भी देहाभिमान करके वास्तविकता से दूर रहता है—

सेवक सेव्य भाव बिन, भव न तरे उरगारि।
भजहूं राम पद पंकज, अस सिद्धांत विचारि।।

काकभुशुन्डि जी बोले "ऐ गरुड़ जी! मैं सेवक हूं और भगवान् मेरे सेव्य अर्थात् स्वामी हैं। इस भाव के बिना भवसागर से पार उतरना कठिन है। ऐसा सिद्धांत विचार कर भगवान् का सदा स्मरण करना चाहिए। सेवक नाम ही सेवा करने वाले का है। जब सेवक हो गया, तब मान काहे का? कबीर जी ने लिखा है—

अहं अग्नि निसदिन जरे, गुरु से चाहे मान।
ताको जम न्यौता दियो, हो हमार मेहमान।।

सेवक होकर जो अपने स्वामी इष्टदेव से मान का इच्छुक है, उसको यमलोक में जाकर भोजन करना है, अर्थात् वह अहं की अग्नि में सदा जलता रहता है और इसी आशा में है कि मेरे स्वामी मुझे कब मान देंगे? वह मान की इच्छा से सेवा करता है। सेवा का शौक नहीं, परन्तु मान का पुजारी है। मानों कि वह एक धुन का कीड़ा है। जो स्वयंमेव लकड़ी के अन्दर उत्पन्न होती है। जैसे पसीने से रिंड (जूं) उत्पन्न होती है। वह कीड़ा देखने में सुन्दर और रेशम जैसा कोमल होता है, परन्तु दुष्ट इतना है कि जिससे उत्पन्न हुआ उसको ही खा जाता है। ठीक इसी प्रकार भक्त की भक्ति रूपी लकड़ी के अन्दर अहंता रूप कीड़ा जो बड़ा कोमल तथा प्रिय लगता है, उत्पन्न होकर भक्ति में विघ्न डाल देता है। वह लकड़ी आटा होकर एक दिन छत से टूट जाती है और मकान की हानि हो जाती है। ऐसे ही अनजान सेवक अपनी अज्ञानता को प्रिय मानता है और जो अहंकार गुरु के अर्पण करना था, वह भी अपने पास रक्खी और उलटा आदर मान का भूखा बनना आरम्भ करके मान मांगने लगा। वही मान एक दिन वियोग का कारण बन कर पहली हालत से भी दूर फेंक देता है। इसलिये प्रभु गर्व प्रहारी है, गर्व को खा जाते हैं। सेवक का अहंकार प्रभु को अच्छा नहीं लगता। जैसे दो मित्रों में से एक को अहंकार आने से दूसरे को विलग होना पड़ता है। ऐसे ही सेवक स्वामी के बीच अहंकार ही दीवार बनकर खड़ा हो जाता है। इसलिये गुरु भगवान के सम्मुख सेवक को अहंकार आना क्लेश का कारण है। इसलिये भगवान् राम ने अमान सेवा गुरु चरणों की शबरी को सुनाई।

क्रमशः

स्वप्न और कुछ भी नहीं

शब्द के अंजुरी भर
एक रूपी प्रदेश से
अर्थ के सार गर्भित
बहुरूपी निर्देश तक
भरपूर सागर में खड़ा
भग्न नावों का मल्लाह
देखता है—
लहरों और चप्पुओं का
घुल मिल कर बिछड़ना
पवन से पाल का
विरोध करना दूर तक
अथवा—
टूट जाना बनकर किसी
पूरब में सूर्य का
या उग आना प्रभात में
चन्द्र का दूर तक
सब स्वप्न के संसार का
यह एक लम्बा सिलसिला है
अर्थहीन अर्थ पर चला
अर्थपूर्ण काफिला है
कभी भागता है रथ
हिमाच्छादित पर्वतों पर
कभी ठहर जाता है
धंस कर मरुभूमि में
कभी—
सुसज्जित होते हैं अश्व
श्वेत—स्वस्थ
भरे—पूरे
चक्र होते हैं निर्मित
हीरक कणों से
जड़ित मणियां
अतुल्य सम्पदा की प्रतीक
और कभी—
अश्वों के स्थान पर
होती है कंकाल माला
ढह-ढह पड़ते हैं—
रुग्ण अश्व
खड़ा रह जाता है रथ
अतुल्य सम्पदा का प्रतीक
तब कुछ-कुछ समझ आता है
स्वप्न और कुछ भी नहीं
रंगीन धरती पर चला—
एक बदरंग काफिला है ।

★ जितेन ठाकुर

"What Is Life"

Life	Is	A	Challange,	Meet	It;
Life	Is	A	Struggle,	Accept	It;
Life	Is	A	Tragedy,	Face	It;
Life	Is	A	Mystery,	Unfold	It;
Life	Is	A	Duty,	Perform	It;
Life	Is	A	Game,	Play	It;
Life	Is	A	Song,	Sing	It;
Life	Is	A	Bliss;	Taste	It;
Life	Is	A	Love;	Enjoy	It;
Life	Is	A	Dream;	Realise	It;
Life	Is	A	Beauty;	Worship	It;
Life	Is	A	Promise;	Fulfil	It;
Life	Is	A	Journey;	Complete	It;
Life	Is	An	Adventure;	Dare	It;
Life	Is	A	Fraud;	Beware of	It;

Swami Tirthanand

SWAMI RAMA TIRTHA IN MODERN CONTEXT

A Paper read by Dr. Anirudh Joshi, Chandigarh in National Seminar on Swami Rama Tirtha held from 29th October to 2nd November, 1973.

I feel sincerely that if there is any great man who can inspire the modern youth and can appeal to them in his entirety, he is Swami Rama. Many of teachings and his practical view of Vedanta are surely the proof of his great ability of for seeing the future. In fact he was a man who stood beyond all limitations of time, age and Geographical bonds. He did not indulge in motaphysic subtleties or any particular system of philosophy or religion.

PRACTICAL VEDANT

The word Practical Vedant somehow caught his fancy. For him it was a comprehensive term, seeking fundamental unity of innerman, who realize the Universal Harmony of love. It is not merely an intellectual ascent but the most soleum and sacred offering of body and mind at the Holy altar of love. This is the first need of today's world, which is the more engrossed in physical uplift of mind and soul. Its devoid of love and harmony. It can only attain peace and splendour if it can follow what Swami Rama Tirtha preached, All life reposes in soul's

Sweet slumber
No God, no man, no cosmos there, no sould.
Naught but Golden Calm and Peace and
Peace and Splendour.'

"It is a denial of little self and realisation of true Atma" consecrating oneself to the love of being 'both man, bird and beast' recognizing man's oneless with the Eternal, embracing all humanity are the significant illustrations of the whole philosophy. The Swami expounded in all clarity three states of consiousness to be achieved through his Vedant—I am all being, All knowledge, All bliss. His view that advancement of science and political democracy in the west, as the triumph of the Oriental Vedant, is more consistent with the present day situation than the past one. His philosophy that intended to embrace the whole of Universe, is what is needed urgently in the strife stricken

world of today.

HIS INTERPRETATION OF VEDANT THROUGH SCIENTIFIC PRINCIPLES

Swami Rama appeals to the modern mind more than any other saint because of his scientific bias of mind. Scientific laws are governing the world and will continue to govern the whole universe whether people know them or not. The modern society, particularly the youth of today is not satisfied on the various explanations about Vedant based on mere faith. It wants something which can appeal to their scientific mind, because ours is predominantly a scientific age. It is here where Swami Rama excels others. Through the application of various Principles of Science he explained the Vedant for instance, Vedant teaches the man to Arise Awake and put his step forward; similar is the conclusion, he asserted one can reach if one looks minutely, what law of acceleration which can also inspire us to be active and get control of the things with power of self. He also proved that animal like tendencies come to a man in various stages through which he passes as a foetus. This has been amply proved by Embryology. It is this impression of Animal passion which may over-power if the man has a weaker will. Man is enert if does'nt change this passion. According to Law of Inertia, man must move ahead towards progress or he will perish. The communities which do not progress and do not love innovation originality, perish. The Law of Evolution also says that in struggle for existence, the weaker goes to the wall. This what the Swami taught. SWAMI RAMA very often used his mathmatical skill to move the ultimate truth of Vedant. Even the Vedant itself was science for him. He has clearly said "The Vedant Philosophy this religion is a religion as well as science.

HIS IDEAS ABOUT SOCIALISM

Swami Rama Tirtha was out and out a socialist. But his concept of socialism was wider, covering its purview a larger community, and broader welfare of the human being. His famous writing on 'Vedanta and Socialism' reveals that he was against any kind of exploitation of man by man. He asserted that the aims of Vedant and Socialism were similar. Both do not accept an individual's right on any possesion of property or wealth etc. Socialism puts society as the owner of all these and Swami Rama termed it as individualism. Vedant Socialism both want equality of human beings. But whereas

Socialism only wants equality. Swami Rama goes a step further in this direction and assigns a spiritual reason for this. According to him man's spiritual right is only of surrendering and not usurping. A man can only attain Ananda if he gives or surrenders something. Begging, asking and snatching keep away the Ananda. Vedantic socialism according to him preaches hard life, of Ulysses and not the life of Lotus-eaters and thats what the Indian sages have been doing. They lived a simple life but worked hard, prodduced great works in various fields. The entire ills of the society can be cured if this world can be taught only one thing in the language of Vedantic socialism that assertion of right on others is nothing but foolishness. Alongwith this Swami Rama preached for the uplift of every human being, so that the blemish of poverty can be removed from this world. This shows how modern was Swami Rama in his outlook. In his ideal social organization. Love is the only law and enlightenment, the only punishment. In fact the Vedant of Swami Rama Tiratha offers spiritual bases for the entire social organization and as such, the ideals that inspire all our relations are superior to and more fundamental than even the lofty ideals of Equality, liberty and and fraternity'.

Swami Rama never thought of a man without society. Knowledge, Peace and Freedom as the ideals of Vedantic pursuits be effective in our social life." He says.

"To work out your own salvation and lest society alone. Oh only if it were possible. A drowning society cannot let you alone. You must sink with her if she sinks and rise with her if she rises. It is an absurdity to believe that an individual can be perfect in an imperfect society". Thus we see that Swami Rama Tirtha's ideas about socialism are appealingly modern and comprehensively inspiring.

MODERN EXPLANATION OF VARIOUS SUBJECTS

Swami Rama is perhaps amongst the rare saints who have putforth the Vedantic explanations for many scientific querries. His coverage of subjects include, Morality, Ralism and Idealism, the Beginning of World, India's womenhood, socialism, and so many other subjects. Rama's views were basically Vedantic but offered to a reader an explanation, entirely different from the traditional one, which was more in line with the thinking coming generations, than of the past. For instance, while accepting this world as creation of God he had some novel explanation of this ideas

that world is not only something to have received God's designing touch of Divine intelligence, but also contains in its entire constituion the Divine Essence of His Being and is identical with Him. writes "According to Vedant the whole world is nothing else but God, the whole world is perfect, the whole world is divinity—the whole world is one". A Noble explanation also comes for this human life which is normally experienced by us as full of misery, ignorance fear of death, restlessness and all types suffering. But Swami Rama Tirtha speaks with his Vedantic confidence that life with all his details has a Divine support and spiritual significance. He says, "My Child, there is one who understands perfectly...... Thers is no friction of your days, your body, your thoughts, your passions which shall not deliberately and calmly be moved, removed, again, when it has played its part...... Whatever you are and whatever you do, there is one who will and does look you candidly in the face and understand you. You may recoil from that geaze : but if you learn to encounter and return it, you will see that, from it at all secret terrors, shame, disfigurement, death itself vanishes away and you will not be alone in the world, but you will be a sovereign Lord over the world". The explanation is consoling and inspiring for those who wander in search of peace, who run for this find. sometimmes in the que of Hippies and sometimes as the followers of Hare Rama Hare Krishna movement. Swami Rama does not advocate an utter severence from the world but a hightening of the mind and its attitude, an enlargement of the mind and its attitude so as to encompass the whole existence within itself. We have in the Upanishads a variety of concepts e.g. immortality of world, 'Companionship of the highest God', 'Likeness to God', 'Absorption in the impersonal' etc. considered as the final goal of life. Swami Rama shows poetic agreement with each one of them, his eloquence being perhaps the greatest for sovereignity and self cosmiciation of God realized. This explanation too, is modern and different from the tradition. In fact it will be correct to say that his philosophy is his dynamic religion which promises a fulfilment of the highest aspirations of a man. Swami Rama believed that basically all religions are alike and Religion is essentially the mtimate quest of a man for the supreme - the origin as well as the final of his being whatever the outer forms or denominations there of.

(Contd. on next issue)

★ आश्रम समाचार ★

वर्षा के अखण्ड पाठ के कारण आश्रम के चारों ओर वनवृक्षों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रकृति ने अपने को हरित परिधान से ढक रखा हो और जीवन में प्रसन्नता व हरित क्रान्ति का उपदेश दे रही हो। फिसलन, जो चारों तरफ असावधान होने पर गिरा देती है, मानों आश्रमस्थ साधक वृन्द को यह उपदेश कर रही हो कि बाहर से गिरना तो मात्र अभिव्यक्ति है अन्दर से गिरने की, निशानी है अपने प्रति अचेत होने की।

महाराज श्री ने इस मास (अगस्त की) ६ ता० को हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया जहां श्री मोहन जौली, कुवेत निवासी के द्वारा रखवाये गये महामृत्युञ्जय मंत्र के दशमांश का हवन व ब्रह्मभोज था। ८ की अपरान्ह हरिद्वार से देहरादून लगभग ३ बजे पहुंचने के बाद आचार्य प्रवर ने कार्यालय सम्बन्धी समस्त विभिन्न कार्यों का निरीक्षण किया तथा उसे योजनाबद्ध रूप में करने के लिए उचित निर्देश दिये।

दिनांक १३ को दूनघाटी के धर्मनिष्ठ व समाजसेवी श्री श्रीराम मरवाह के सुपुत्र श्री ओम्प्रकाश मरवाह के आकस्मिक निधन की तेहरवीं व पगड़ी की रस्म पर परमाध्यक्ष जी ने आत्मीयजन के वियोग से सन्तप्त परिवार को धैर्य्य व विवेकपूर्वक इस दुःख को सहने की प्रार्थना की तथा अपने प्रवचन में गरुण पुराण के अनुसार गत आत्माओं के परलोकगमन पर प्रकाश डालते हुए गत आत्मा को सामूहिक रूप में मूक श्रद्धाञ्जलि समर्पित की।

दिनांक २६ तक आश्रम पर ही निवास करने के बाद आपने सहारनपुर, गौशाला रोड़ स्थित परमहंस सत्संग भवन में प्रचार हेतु प्रस्थान किया। जहां, सम्भवतया, दुग्धपान में गड़बडी के कारण आपको हृदय सम्बन्धी अस्वस्थता का सामना करना पडा, पर अपने अलौकिक आत्मविश्वास के कारण तथा भवनस्थ प्रभु प्रेमियों की अनन्य श्रद्धा व डा० साहिब (गुप्ता) की सहज सहानुभूति के फलस्वरूप अब आप पूर्णतः स्वस्थ हैं। आपके स्वास्थ्य हेतु दूनवासी रामप्रेमियों ने—"मंगलभवन अमंगल हारी, द्रवहुं सो दशरथ अजर बिहारी।" इस पवित्र चौपाई से सम्पुटित कर दिनांक ३० मंगलवार को राजपुर रोड़ स्थित हरिॐ सत्संग भवन में सुन्दर काण्ड का सामूहिक रूप में पाठ किया। पत्रिका भी रामचरणों में महाराज श्री के भावी स्वस्थ जीवन की प्रार्थना करती है जिससे आपके वरद्हस्त द्वारा ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी द्वारा संस्थापित यह संस्था—स्वामी रामतीर्थ मिशन—उन उद्देश्यों की ओर उत्तरोत्तर उन्नति करे जिन्हें स्वामी राम ने, व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व के मौलिक उद्देश्यों के रूप में प्रतिपादित किया है।

आशा की जाती है check-up करवाने हेतु महाराजश्री दिल्ली आकर मिशन में पधारेंगे।

—सह-सम्पादक

दूरभाष-८४२२१ राजपुर, ४२६७ देहरादून, तार का पता-(वेदान्त) देहरादून, रजि० नं. डी. एल. १५

-सूचना-

१-मासिक पत्रिका 'राम सन्देश' न मिलने प अपने समीपस्थ डाकखाने (पत्रालय) से पता करने के पश्चात् हमें सूचित करें। क्योंकि कभी कभी किसी कारणवश "रामसन्देश" १५ ता० तक निकलता है । इसलिए शिकायत पत्र अपनी अपनी ग्राहक संख्या सहित दिनांक २० के बाद प्रेषित करने का कष्ट करें।

२- कृपया आप १९७७ का १० रुपये चन्दा शीघ्र भेजने की कृपा करें। यदि आपने १९७६ का शुल्क प्रेषित नहीं किया, तो वह भी साथ ही भेज दें।

३ — आप आश्रम में किसी भी प्रकार का धन भेजते समय यह लिखना न भूलें कि यह धन किस निमित्त भेजा जा रहा है।

४-यह प्रार्थना है कि जो पाठक इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं वे अपना सदस्यता शुल्क सम्पादक के नाम प्रेषित करें। सदस्यों को आजीवन पुनः बिना किसी शुल्क के यह पत्रिका प्रेषित की जायेगी।

५- राम सन्देश आपकी अपनी पत्रिका है । इसके ग्राहक बढ़ायें और शहन्शाह राम, स्वामी हरिॐ जी महाराज तथा वेदान्त के विचारों को जन-साधारण तक पहुंचाने में हमारा सहयोग दें।

धन्यवाद

मैनेजर
देसराज मलिक

स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून (उ०प्र०) के लिए प्रकाशक स्वामी गोविन्द प्रकाश द्वारा न्यू आईडियल प्रिंटिंग हाउस, ४ बी, नेशविला रोड देहरादून में मुद्रित।

(राम - सन्देश)

अक्टूबर १९७७

एक प्रति
भारत में ८५ पैसे, विदेश में १ रु०

वार्षिक भेंट
भारत में १० रु०, विदेश में १५ रु०

आजीवन सदस्यता शुल्क :
भारत में—१००/-, विदेश में—५००/-

—संस्थापक—
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज

—व्यवस्थापक—
आचार्य स्वामी गोविन्दप्रकाश जी महाराज

विषय-सूची

मुख्य सम्पादक—
स्वामी हंस प्रकाश वेदान्ताचार्य एम०ए० (दर्शन)

सह सम्पादक—
काका हरिॐ "निर्द्वन्द्व"

'राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'

—स्वामी राम

वेदान्त, अध्यात्म, संस्कृति, धर्म एवं भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा
स्वामी राम के आदर्शों का उपस्थापक एकमात्र लोकप्रिय मासिक—

राम-सन्देश

वेदोपनिषदां तत्त्वम् सत्यं नित्यं सनातनम् ।
तत्सर्वं "रामसन्देशे" पत्रेऽस्मिन्नवलोक्यताम् ॥

वर्ष २६	राजपुर-देहरादून-अक्टूबर १९७७	वार्षिक शुल्क : १० रु०,
अंक १०		एक प्रति-८५ पै०,

तब रुक न हंसी मेरी पाती !

आघात लगा भीषण कटुतर,
बेसुध, भयभीत हुआ जीवन,
जिसने आघात किया निष्ठुर,
वह झिलमिल कम्पित छाया तन,
जब भ्रम की ही छाया से व्याकुल हो जाता तन का स्वामी,
तब रुक न हंसी मेरी पाती।

छीनने चला जब श्वान मांस,
सर में लख बिम्बित निज छाया।
जो था भी उसको खो बैठा,
सच सुख को खो, धोखा खाया।
जब जब घटती जग में ऐसी कटु हास भरी अघटन घटना।
तब रुक न हंसी मेरी पाती।

क्या प्यार करूं मैं स्वयं प्यार,
कामना नहीं कुछ जीवन में,
जन-जन कण-कण का उर मैं ही,
इच्छा की जगह खुशी मन में,
निज सा ही मैं रमता सब में,
जीवन प्रकाश भरता सब में,
जन-जन जीवन-नौका का मैं, एक मात्र हूँ कर्णधार !
अब रुक न हंसी मेरी पाती ।

गतांक से आगे:—

जनवरी १६०२ में भारत-धर्म-महामण्डल भवन मथुरा में स्वामी राम का व्याख्यान, श्रीनारायण स्वामी द्वारा लिखित नोटों से—

व्यावहारिक वेदान्त

सुधार

—स्वामी राम

विकासवाद की दृष्टि से भी मनुष्य को समस्त सृष्टि पर श्रेष्ठता दी गई है। इसका अधिकांश कारण केवल यही है कि वह चेतन-शक्ति, जो वेदान्त में ज्योति के नाम से पुकारी जाती है, जड़ जगत् में प्रकट होना चाहती है, किन्तु जड़ जगत् में पर्दा अत्यन्त मोटा होने से उस (ज्योति) का प्रकाश वहां इतना प्रकट नहीं होता, जितना कि वनस्पति जगत् में से होता है। इसलिए वनस्पति जगत् की श्रेणी जड़ जगत् से ऊंची मानी गई है। और वनस्पति में भी जब वह चेतन-शक्ति अपने आपको प्रकट किया चाहती है, तो यद्यपि जड़ जगत् की अपेक्षा पर्दा वहां जरा कम स्थूल होता है, तो भी कुछ स्थूल होने के कारण वहां वह इतना प्रकट नहीं होती, जितना कि प्राणी (चेतन) जगत् में होती है, इसलिये प्राणियों की श्रेणी जड़ और वनस्पति से बढ़कर मानी गई है। फिर पशुओं में जब वह प्रकाश स्वरूप आत्मा अपना प्रकाश बाहर फैलाना चाहता है, यद्यपि उनमें जड़ और वनस्पति की अपेक्षा पर्दा और भी कम स्थूल होता है, तथापि स्थूल होने के कारण उनमें से ज्योतिर्मय सूर्य का प्रकाश उतना भासमान नहीं होता, जितना कि मनुष्य में हो सकता है, अतः मनुष्यों का दर्जा अन्य समस्त सृष्टि अर्थात् जड़ वनस्पति और प्राणी सृष्टि में उत्तम माना गया है। किन्तु विकासवाद केवल यहां तक ही अन्त नहीं करता, वरन् मनुष्यों में भी आगे बहुत-सी श्रेणियां हैं; विशेषतः दो दर्जे मनुष्यों को बतलाये जाते हैं। इन दो दर्जों के आगे और दर्जा विकासवाद ने आज तक न तो बताया, और न स्थिर किया है। मनुष्यों को दो बड़ी श्रेणियों में विभक्त किया गया है—एक ज्ञानी की, दूसरी अज्ञानी की। ज्ञानी वह जिसका अन्तः-करण रूपी पर्दा अत्यन्त सूक्ष्म और स्वच्छ है, और अज्ञानी वह जिसका अन्तःकरण रूपी पर्दा स्थूल और मलिन है—जैसे ग्लोबदार लैम्प में दो चिमनियाँ होती हैं, एक अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ और पतली होती है कि जिसके भीतर से लैम्प का

प्रकाश निकलकर समस्त मनुष्यों की आंखें चौंधिया देता है, दूसरी निर्मल और अल्प स्वच्छ तो होती है, मगर पहली की अपेक्षा थोड़ी मोटी और धुन्धली होती है। जिसमें से लैम्प का प्रकाश तो बाहर आता है, मगर पहिले की अपेक्षा बहुत ही हल्का होता है। इस तरह ज्ञानी का अन्तःकरण उस उस अत्यन्त महीन, निर्मल और स्वच्छ चिमनी के समान होता है, जिसके भीतर से आत्मदेव की ज्योति ऐसे वेग से बाहर प्रकाशित होती है कि बीच में अन्तःकरण रूपी पर्दा देखने में ही नहीं आता, वरन् असली ज्योति ही आंखें मारती मालूम देती है; मगर अज्ञानी का अन्तःकरण उस ग्लोब के समान होता है, कि जिसके भीतर तो प्रकाश उसी प्रकार जोर का होता है, जैसा पहली चिमनी के भीतर था, मगर बाहर इस जोर से प्रकट नहीं होता, जैसे पहली चिमनी से फूट-फूट-कर निकलता है। अर्थात् जिसमें से पहले की अपेक्षा प्रकाश हलका और धुन्धला सा निकलता है, और ज्योति रूपी लाट भी धुन्धला पर्दा होने के कारण आंखें मारती कम दिखाई देती है। इस तरह से, हे भगवन्! उस सूर्यों के सूर्य के तेज को बाहर प्रकट करने के सिवाय अन्तःकरण को शुद्ध करने के और कोई साधन या उपाय नहीं है। अन्तःकरण जब शुद्ध हो जाएगा तो फिर चाहे आत्मज्योति प्रकाश को बाहर प्रकट करने का प्रयत्न करे अथवा न करे, ज्योति बिना आपके प्रयत्न के आपके भीतर से फूट-फूटकर बाहर निकलेगी। इस स्वच्छ अन्तःकरण में से प्रकाश निकल कर अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरणों को भी, जो चिमनी के ऊपर के ग्लोब के समान है, प्रकाशमान कर देगा। इसलिये आपका काम केवल अपने अन्तःकरण को ही अति पतली चिमनी के समान साफ और स्वच्छ बना देना है। जब अन्तःकरण खूब निर्मल हो जायेगा, तो उससे प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी पुरुषों के मनों को भी प्रकाशित कर देगा। इसलिये हे भगवन्! पहले अपने अन्तःकरण को पतली और निर्मल, स्वच्छ चिमनी के समान बनाइये। इस प्रकार आपका अपना हृदय शुद्ध करना ही दूसरों का उपकार करना है। जिस समय अन्तःकरण बिल्लौर के समान स्वच्छ हो जायेगा, तो ज्ञान-रूपी प्रकाश बिना आपके प्रयत्न और खोज के भीतर से प्रज्वलित होता हुआ औरों के हृदयों को प्रकाशित करेगा, तब विकास-वाद के नियम के अनुकूल भी आपका दर्जा समस्त जातियों से उत्तम होगा। क्योंकि जब वह ज्योति मनुष्य के अन्तःकरण से निकलती हुई अपना पूरा-पूरा तेज बाहर दिखला देती है, तो उस समय विकासवाद के तत्व-वेत्ता भी उस मनुष्य को समस्त अन्य मनुष्यों पर विशेषता देते हैं, अर्थात् उसका दर्जा सारे संसार की सृष्टि से बढ़कर मानते हैं; मगर हिन्दुओं के यहाँ तो यह अवतार समझा जाता है। अतः यदि मनों में संसार के उद्धार करने का आवेश उठता है, तो ऐ सहानुभूति करने वालों! पहले अपने आपका सुधार करो, और

इस प्रकार से आपका अपने हृदय को शुद्ध करना अपने आत्मा में निष्ठा करना ही अपने आपका सुधार करना होगा। जब इस रीति से अपना सुधार हो जायेगा, तो यह अवश्य समझ लेना कि दूसरों का भी अपने आप सुधार हो जायेगा; वरन् सबको निश्चय करना चाहिये कि इस नियम के विरुद्ध सुधार कभी संसार में न हुआ है और न होगा। इस विषय में आपको अपना अनुभव गवाही देगा।

क्रमशः

★ संयम ★

—वि० स० खांडेकर

भारतीय संस्कृति ने सुखी जीवन के आधार के रूप संयम के सूत्र पर ही हमेशा बल दिया है। यह समाज जब भी अर्थहीन वैराग्य की ओर अवास्तविक झुका है, भौतिक समृद्धि की ओर इस संस्कृति ने अनजाने पीठ फेर ली है। विगत तीन सदियों में विज्ञान के सहारे पली यांत्रिक संस्कृति संसार के जीवन की स्वामिनी बनती जा रही है। इस संस्कृति का शिकार बना इन्सान भोगवाद को ही जीवन का मध्यवर्ती सूत्र मानकर जीने की कोशिश कर रहा है। किन्तु भारतीय संस्कृति में बताया गया चरम वैराग्य जिस तरह मानव को सुखी नहीं कर सकता, उसी तरह यांत्रिक संस्कृति में बखाना गया अनिबन्ध भोगवाद भी आजकल के मानव को सुखी नहीं कर सकेगा।

मनुष्य के लिये जैसे शरीर है वैसे ही आत्मा भी है। दैहिक जीवन में जब इन दोनों की न्यूनतम भूख मिट सकेगी, तभी जीवन में सन्तुलन बना रह सकेगा। हजार हाथों के भौतिक समृद्धि उछालते, बिखेरते आने वाले यंत्र युग में इस सन्तुलन को बनाये रखना हो तो व्यक्ति को अपने सुख की भांति परिवार और समाज के सुख की ओर भी ध्यान देना पड़ेगा। केवल उनके लिये ही नहीं, बल्कि राष्ट्र और मानवता के लिये भी उसे कुछ त्याग करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता और विश्व के केन्द्र में स्थित परम शक्ति के साथ अपनी प्रतिबद्धता को जो जानता है और मानता है, वही भोगवाद के युग में भी जीवन का सन्तुलन बनाए रख सकेगा।........।व्यक्ति और समाज के जीवन में सन्तुलन रहा तभी जनतन्त्र और समाजवाद के आधुनिक जीवन-मूल्य खिल पायेंगे, अन्यथा यह असम्भव है। ("ययाति भूमिका" से साभार)
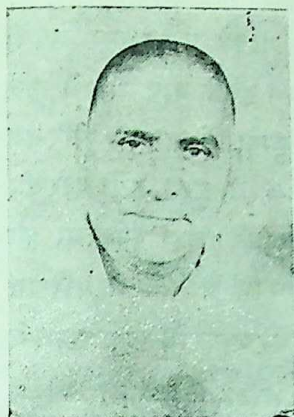
ब्रह्मलीन स्वामी गोविन्द प्रकाश जी महाराज का संक्षिप्त परिचय :-

सन्त प्रसविनी भारत भूमि ने, जहां की संस्कृति का उद्घोष-जननि
जने तो भक्त जन या दाता या सूर, नहिं तो जननी बांझ रहे काहे गवांवे नूर
के रूप में रहा है, अनेक सन्तों की तरह, जिन्होंने अपने अलौकिक ज्ञान
और आध्यात्मिक कर्मठता द्वारा विश्व को जीवन की सही परिभाषा
की ओर सकेत देते हुए सही रूप में जीना सिखाया, अपनी ही गोद
में जिला मियाँ वाली के एक ग्राम निवासी धार्मिक एवं सन्त सेवी बत्रा
परिवार में एक ऐसी विभूति को सन् १९२१ में दिया में जिसे आज
समस्त आध्यात्म की जगत स्वामी गोविन्द प्रकाश जी महाराज के नाम से जानता है।

महाराज श्री की प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव की पाठशाला में ही हुई। बाल्याबस्था की
वैराग्य प्रवृत्ति के कारण १४ वर्ष की अल्पायु में ही गृहत्याग कर आपने ब्रह्मलीन स्वामी अमरदेव
जी पटौदी वालों की पाठशाला में संस्कृत एवं हिन्दी का अध्ययन करने के प्रवेश लिया। अपनी
ब्रह्मचर्यावस्था में विरक्त प्रवर स्वामी अनन्त प्रकाश जी महाराज की मण्डली के साथ आपने
सारे पंजाब का भ्रमण किया तथा १९४२ में आपका पदार्पण माँ पतित पतित पावनी गंगा के तट
पर बसे पवित्र तीर्थस्थल हरिद्वार में हुआ। संस्कृत साहित्य और भारतीय दर्शन के गहन
अध्ययन की प्रवृत्ति और तज्जन्य अनुराग के कारण अपने भ्रमण कार्य को बन्द कर आपने
अवधूतमण्डलाश्रम में स्थायी निवास का निश्चय किया तथा नाथ सम्प्रदाय की पाठशाला
योगाश्रम और उदासीन सम्प्रदाय की पाठशाला उदासीन संस्कृत विद्यालय में अपना अध्ययन
प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक परिस्थिति को अपना परीक्षाकाल समझते हुए अपने विद्यार्थी
जीवन को तपस्वी जीवन बना अपना प्रारम्भिक संस्कृताध्ययन आपने समाप्त किया और स्वयं
को पात्र ,बना आपने १९४६ में शिव भूमि, विद्वानों की रमणीयस्थली, भारत की गौरवरूपा
काशी की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच आपने अवधूत मण्डलाश्रम, हरिद्वार के महन्त स्वामी
राम प्रकाश जी महाराज से शिष्यत्व ग्रहण कर संन्यास ले लिया था। वहां काशी में कठोर
स्वाध्यायतप के साथ ही दैनिक भगवान आशुतोष का दर्शन, अर्चन तथा मां गंगा का स्नान
भी आपके जीवन के अभिन्न अंग थे। सन् १९५३ में वेदान्ताचार्य परीक्षा में पूर्व सभी सीमाओं को

तोड़ नवीन सीमा निर्धारण करते हुए राष्ट्रपति के स्वर्णपदक को आपने प्राप्त कर अपनी प्रतिभा द्वारा काशी के विद्वानों को अपनी अलौकिकता का परिचय दिया। इसके बाद आपने कुछ समय प्रयागराज में व्यतीत किया। इसी बीच १९५४ में प्रयागराज के कुम्भ में आपका परिचय स्वामी रामतीर्थ मिशन के संस्थापक ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज से हुआ इसी परिचय ने कालान्तर में प्रगाढ़ता को प्राप्त किया। प्रयाग-कुम्भ में शिविर की सारी व्यवस्था का भार स्वामी हरिॐ जी महाराज ने आपके कन्धों पर डाल दिया और राम प्रेमियों से परिचय कराने हेतु उनको कलकत्ता ले गये। अपने प्रवचनों में जगह२ स्वामी हरिॐ जी महाराज कहा करते थे "गोविन्द तो मेरा स्वरूप है"। योग्य अधिकारी को पा ४ दिसम्बर १९५५ को दिल्ली में अपनी जीवन लीला को "ॐ" "ॐ" की पवित्र ध्वनि का उच्चारण करते हुए स्वामी हरिॐ जी महाराज ने समाप्त किया और अपने शारीरिक बन्धनों को तोड़ ब्रह्मलीन हो गये। तदनन्तर २२ वर्ष के कार्यकाल में स्वामी रामतीर्थ मिशन के परमाध्यक्ष पद पर आश्रम की सर्वाङ्गीण उन्नति के साथ ही अन्य जिन संस्थाओं की उन्नति में आपकी प्रेरणा व आशीर्वाद रहा उनमें अवधूतमण्डलाश्रम, भगवानदास संस्कृत महाविद्यालय, ब्रह्मनिवास आश्रम व मिशन की अलीगढ़, दिल्ली, इलाहाबाद आदि शाखाएं भी अन्तर्निहित हैं। आश्रम की समस्त व्यवस्था का निरीक्षण करते हुए आप सहारनपुर प्रचारार्थ गये जहां आपको हृदय सम्बन्धिनी अस्वस्थता का सामना करना पडा। वहां से हरिद्वार आ समस्त विद्यार्थियों और संस्कृत विद्वानों को सम्मानित करने के बाद दिनांक १९-९-७७ सोमवार के २ बजे (अपराह्न) आप दिल्ली में ब्रह्मीभूत हो गये। ऐसे महान समन्वयवादी, प्रेम की साक्षात्मूर्ति, सादगी और सौजन्यता के अवतार और परोपकार के जीवन्त स्वरूप ब्रह्मलीन को हमारा कोटिशः प्रणाम है।

—स्वामी हंस प्रकाश

आवश्यक सूचना

जो रामप्रेमी स्वामी जी के पत्र, श्रद्धाञ्जलि या अन्य घटनायें, जो स्वामी जी के साथ घटित हुई, भेजना चाहें वे पत्रिका के सम्पादक के नाम पर जल्दी से जल्दी भेजने की कृपा करें क्योंकि पत्रिका का आगामी अंक महाराज श्री (ब्रह्मलीन) के पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशक होगा, यह हमारी सम्भावना है। अपने तत्सम्बन्धी लेख या अन्य प्रकाशन सामग्री को १५-१०-७७ से पूर्व प्रेषित कर हमें अनुगृहित करें।

सम्पादकीय

जीवन में संयोग और वियोग, दुःख और सुख, कांटे और फूल, जन्म और मृत्यु ये सभी सापेक्षिक घटनाएं और स्थितियां आती हैं। यदि इनमें से एक ही रहे तो उसे जीवन नहीं कहा जा सकता। इसी जीवन की सत्यता की ओर भारत का आध्यात्मिक और अलौकिक दर्शन अपने विभिन्न सिद्धान्तों द्वारा संकेत करता आ रहा है। कार्य-कारण सिद्धान्त के आधार पर जीवन की व्याख्या करने वाला व्यक्ति जब समक्ष किसी कारण को नहीं देख पाता तब उसे वह आश्चर्य पूर्वक दृष्टि से देखता है और उस घटना को "अचानक घटना" द्वारा सम्बोधित करता हुआ अपनी बौद्धिक शक्ति की हार स्वीकार कर लेता है।

मृत्यु भी इसी ही प्रकार की घटना है जिसे चार्वाक् मुक्ति मानता है, गीताकार पुराने वस्त्रों का परित्याग व अव्यक्त का व्यक्त से पुनः अव्यक्त होना। इसके विषय में निश्चित उत्तर व समाधान देते हुए कुछ न द्वारा इसी जीवन की सफलता को अग्रिम जीवन की सफलता की सीढ़ी के रूप में माना गया है। यही कारण है कि किसी उर्दू के कवि को इस परलोक के विषय में निराश सा होकर कहना पड़ा—

फिरा न मुल्के अदम से कोई कि मैं पूछूं।
कहो मुसाफिरो मंजिल पे क्या गुजरती है॥

जीवन की इस सत्यता (मृत्यु) को जानता हुआ भी व्यक्ति न जाने क्यों अकल्पित घटनावत् इस घटना के घटने पर रोता है। रोता ही नहीं अपितु कभी २ तो अपने जीवन को पूर्णतः असन्तुलित कर स्वयं दीखने में जीवित सा भी मृत हो जाता है। इन रुदन करने वालों में जीवन के प्रति अचेत ही नहीं अपितु सचेत व्यक्तियों को भी हम समान स्थिति में पाते हैं। निर्वाण प्राप्त बुद्ध अपने शिष्य की मृत्यु पर रोते हैं, अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राज्य को कण समान समझ परित्याग करने वाले राम अश्रुयुक्त हो जाते हैं। कवि दृष्टि में तो प्रकृति के वृक्ष से टूटने वाले-कच्चे-पत्तों के वियोग में वृक्ष भी मानों रोता है जब उस स्थान से, जहां से पत्ता तोड़ा जाता है, पानी निकलता है।

इस वियोग के कारण अन्तर में दुःख की स्थिति अश्रु के रूप में अपने राग को प्रकट करता है जो वियुक्त वस्तु के साथ वियोगी का होता है। परन्तु बहिर्कारणों से प्रभावित व आसक्त वियोगी शनैः २ उस आघात को किसी नये स्रोत को ढूँढ सहला २ कर भूल जाता है। और उसका वह व्यवहार, जिसे वह असामान्य रूप में कर रहा था, सामान्य हो जाता है। जिस व्यक्ति को प्रभावित करने वाले कारण कुछ आन्तरिक और सूक्ष्म होते हैं वे व्यवहार में विस्मृत से प्रतीत होते हुए भी मौन रूप में उसी में केन्द्रित रहते हैं और व्यवहार करते हैं। कुछ इससे अन्य, जिन्हें हम जीवन के प्रति सचेत पूर्णतया कह सकते हैं, इस प्रकार के व्यक्ति भी हैं जो आत्मा की नित्यता और शरीर की क्षणिकता को समझते हुए गतात्मा के साथ अपने सम्बन्ध का निश्चय आत्म - दृष्टि से करते हैं। ऐसे व्यक्ति गत के गुणों का मात्र गान सभाओं में नहीं करते अपितु उसे भावस्थित श्रद्धा के द्वारा अपने कर्मों के माध्यम से श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर करते हैं।

आज बिलकुल यही दशा हम रामप्रेमियों की है, जिनके सर पर से परमश्रद्धेय स्वामी हरि ओ३म् जी के बाद तद्रूप स्वामी गोविन्द प्रकाश जी महाराज का वरद् और अभय हस्त दिनांक १९—९—७७ तदनुसार सोमवार को कठोरकाल के हाथों दिल्ली में हट गया है। इस अघटित घटना को समष्टि और व्यष्टि उभय रूपों में हमें अपना प्रारब्ध मान स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि इन दोनों महापुरुषों ने स्वामी हरि ओ३म् जी महाराज, स्वामी गोविन्द प्रकाश जी महाराज - ने जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार कि चिन्ता किये बिना संघर्ष किया वे उद्देश्य अभी समष्टि रूप से हमारे सामने हैं। और बिना कोई ऐसा कार्य किये जिससे उनके चरित्र पर ऊंगली उठे हम सब को मिल कर प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम उन आदर्शों को - जिन्हें हमने उनके जीवन में देखा और जिनका वे उपदेश करते थे—अपने जीवन में उतारेंगे। क्योंकि ऐसा निश्चय न करते हुए उन्हें केवल बाहरी शब्दाडम्बर रूप में दी गई श्रद्धाञ्जलि निरर्थक होगी। उनके बारे में शोक करना तुलसी के शब्दों में उपयुक्त नहीं—

……सोचिअ जती प्रपंचरत विगत विवेक विराग।
बैखानस सोई सोचै जोगू। तप बिहाई जेहि भावई भोगू।

इस प्रकार सादगी, प्रेम, और समन्वय की साक्षात्मूर्ति द्वारा इंगित मार्ग पर चलने का वचन देती हुई पत्रिका आपकी उन श्रद्धाञ्जलियों को सप्रेम आमन्त्रित करती है जिन्हें आप उनके संस्मरण या उपदेश के रूप में अग्रिम मास के अंक के लिए भेज सकते हैं।

सोचनीय नहिं…………भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ
अन्त में— भयऊ न अहइ न अब होनिहारा ……………अस्तु।

स्वाधीनता से पहले और स्वाधीनता के बाद

★ राम कुमार श्रीवास्तव ★

भारतवर्ष का इतिहास पाँच हजार वर्ष पुराना है। ईसा से पांच हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता में घर और कला विद्यमान थी। द्रविड़ सभ्यता और आर्य सभ्यता के संघर्ष से एक धर्म-बद्ध, प्रगतिशील संस्कृति का आविर्भाव हुआ। उसके बाद महात्मा बुद्ध और महावीर जैन ने संस्कृति का ऐसा परिमार्जन किया जिसमें जन साधारण के लिए मुक्ति और स्वाधीनता के द्वार खुल गये। बुद्ध ने जातिवाद का विरोध कर अहिंसा का पाठ पढ़ाया। अशोक से हर्षवर्धन तक का युग सांसारिक प्रगति की दृष्टि से भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था। इसके बाद मुस्लिम प्रणाली बादशाहों तथा जागीरदारों पर निर्भर थी। मुगल राज्य के पतन के समय मराठे, सिख, जाट व रुहेले जैसी सामन्त-वादी शक्तियों का जन्म हुआ, और तत्पश्चात् अंग्रेजी सभ्यता में जड़ें जमाना आरम्भ कर दिया।

अंग्रेजी सभ्यता और वृत्ति

मुगल राज्य की दुर्बलता के साथ अंग्रेजी हुकूमत की रूपरेखा 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के रूप में आई। अंग्रेजी सभ्यता बनिया-वृति पर आधारित थी बाहर से आई हुई यह सभ्यता भारतीयता के रंग में नहीं रंग सकी। अंग्रेज सोचते थे कि उनका हित इसी में है कि वे भारत को कृषि प्रधान देश बनाये रखें। अंग्रेजो सभ्यता के साथ-साथ जागरण तो आया पर सृजनात्मक रूप में नहीं। प्रेस, यातायात, समाचार पत्र, थोड़े विज्ञान तथा अंग्रेजी शिक्षा से भारत की संस्कृति को थोड़ा बहुत नया मोड़ मिला, जो पर्याप्त नहीं था।

धर्म और समाज सुधार

उस समय के भारत में धर्म और प्रथाओं की बड़ी छाप थी। ब्रह्म समाज, सोशल कांफ्रेंस, प्रार्थना समाज तथा सर सैय्यद अहमद के सुधार आन्दोलन ने धर्म का सही उत्तरदायित्व प्रस्तुत कर प्रथागत कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया, जैसे बाल-विवाह, सती-प्रथा, बलिदान आदि। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने मूर्ति पूजा पर विशेष बल नहीं दिया।

परम्परावाद

प्राचीनकाल में हमारा देश घोर परम्परा-वादी था। "परम्परा, प्रयोग और प्रगति एक ही प्रतिक्रिया की तीन कड़ियां हैं।" —हजारी प्रसाद द्विवेदी। विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में—"परम्परा बन्धन नहीं। इतिहास को व्याख्या बदलती रही है।" परम्परम्पराओं के बन्धनों ने जहां हमें एक और शाश्वत किया है वह कोई जीवन का

ठोस मापदण्ड प्रदान नहीं किया है। परम्परायें कुछ हद तक आवश्यक भी हैं और निरर्थक भी। महादेवी वर्मा के शब्दों में—"विकास के अनादि क्रम में मनुष्य, केवल कर्म की दृष्टि से ही नहीं, अपने चिन्तन, दर्शन, आस्था आदि की दृष्टि से भी किसी ऐसी सुनहरी परम्परा की कड़ी है, जिसका एक छोर अतीत में तथा दूसरा छोर भविष्य में अलक्ष्य रहता है। मानव जीवन का संचालक ऋत. युग-युगान्तर से उसके पूर्वजों की मूल्यात्मक उयपब्धियों से निर्मित होता जा रहा है। इतिहास घटनाओं का इति वृत्तात्मक लेखा—जोखा है।" कहने का तात्पर्य यह है कि परम्परायें नेष्ट भी हैं और आवश्यक भी, पर अति की दृष्टि से सर्वथा अमान्य।

'संस्कृति परम्पराओं का मापदण्ड है। परम्पराए, उन रस्सियों की तरह हैं जो सामाजिक इकाई को बांधती हैं।'—वि. ना० साही। यह सच है कि परम्पराओं जैसे व्याह-संस्कार, कनछेदन, मुण्डन आदि के हर्षोल्लास में मानव इकाइयां काफी करीब हो जाती हैं। पर कुछ 'संकुचित' संस्कृति की द्योतक भी होती है। परम्पराओं को कम प्रधानता देने के लिए शिक्षकों, लेखकों, समाज सुधारकों ने अपने प्रयास जारी रखे।

गाँधीवाद

महात्मा गाँधी ने भारत की आत्मा को जगाया और नये स्वप्न देखने का अवसर प्रदान किया। घृणा और हिंसा को छोड़ कर प्रेम स्वदेश प्रेम तथा सबके कल्याण का पाठ पढ़ाया। रूढ़िवादी विचारों का बहिष्कार तथा अस्पृश्यता का समावेश किया। उस समय की शिक्षा, विज्ञान तथा औद्योगिक उन्नति भी पिछड़ेपन को दूर करने में उतनी सहायक नहीं हुई जितनी चेतना संवर्द्धन में। उन्होंने कहा—"इतिहास के पन्ने इस बात के गवाह हैं कि जब कभी इस संसार में अशांति और अराजकता फैली है तो उसके मूल में मुठ्ठी पर लोग थे। अधिकांश मनुष्य शांति चाहते हैं। कुछ लोग धर्म, जाति तथा अंधी राष्ट्रीयता के नाम पर और आर्थिक स्वार्थ के पीछे शांति का गला घोंटने को तैयार हो जाते हैं।"

गाँधी जी ने मानव-उत्थान के लिए सप्त महाव्रत का उपदेश दिया: सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद और अभय का पालन आदि।

लोकतन्त्र और समाजवाद

अंग्रेजी शासन राजनैतिक तथा आर्थिक शासन से ही संतुष्ट था। उसे संकृति तथा सामाजिक परिवर्तन में कोई रुचि नहीं थी। भारत में

उस समय सामंतशाही भूमिधरी निर्मित अर्थव्यस्था को आधुनिक औद्योगीकरण द्वारा ब्रिटिश काल में चुनौती नहीं दी गई। लोकतन्त्र वास्तव में जनता का तन्त्र या लोगों का तन्त्र है। "लोकतन्त्र राजनीति ही नहीं, जीवन मूल्य भी है: ए० हुसेन।" एक सुव्यवस्थित लोकतन्त्र की स्थापना चुनाव जीत जाने मात्र से नहीं हो पाती वरन् उत्तरदायित्व की भावना के साथ परिबर्तन के मूल सिद्धान्तों को स्वीकरना पड़ता है प्रत्येक राष्ट्र मानव समूह ही नहीं है बल्कि एक सजग इकाई के रूप में है जो आदर्शों तथा सिद्धान्तों, पर विकासोन्मुख होता है।

प्रजातन्त्र और समाजवाद योरुप की दो विभिन्न क्रांतियों के बाई-प्रोडक्ड हैं। प्रजातन्त्र का अर्थ है जनता का शासन और समाजबाद का अर्थ है समाज का शासन।

समाज के पर्यावरण में जब एक तरह के समाज में होने बाले परिवर्तनों से दूसरे पर प्रभाव पड़े और जब प्रतिष्ठित स्वरूपों में कुछ परिवर्तन हो उसका प्रभाव बाद तक बना रहे, उस समय जो प्रगति होती है वह सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका के अन्तर्गत होती है। बगैर उद्देश्य व 'एप्टीट्यूड' के कोई भी समाज व राष्ट्र जड़ ही बना रहता है। समाजवाद एवम् प्रजातन्त्र दोनों की सफलता गैर-सरकारी तथा राजनीति-निरपेक्ष आन्दोलनों तथा सुव्यबस्थित शिक्षा पर निर्भर करती है। सामाजिक पर्यावरण और परिवेश की आवश्यकताओं के अनुसार जीवन के चिन्मय मूल्यों को परिवर्त्तित किया जाना आवश्यक है।

शिक्षा

समाज-व्यवस्था और शिक्षा का चोली दामन का साथ है। शिक्षा समाज का उद्देश्य निश्चित करती है। गांधी जी के अनुसार शिक्षा सर्वोदय अर्थात् सबके कल्याण के लिए आवश्यक है। आज के संघर्षात्मक युग में गांधी के सिद्धान्तों का मूल्य कई गुना बढ़ चुका है। शिक्षा का विदेशी ही नहीं स्वदेशी भी होना आवश्यक है। हमें अपनी बुराइयों को सुनकर सुधारने की कोशिश करनी चाहिये।

हम इतिहास की बातों का डंका पीट कर आगे नहीं बढ़ सकते। जय-पराजय, उतार-चढ़ाव हर देश हर युग में आये हैं, आज के भारत में स्वाधीनता को साकार करने के लिए उद्देश्यपूर्ण कामना की आवश्यकता है तत्पश्चात् स्वर्णयुग की पुनरावृत्ति हो सकती है।

हिप्पीबाद या दम तोड़ती हुई जवानियां

आज हमारे देश में हिप्पीवाद का बोल-बाला है। फैशन, परस्तों तथा नकलचियों का

बाहुल्य है। हम अपनी संस्कृति और सभ्यता से कोसों दूर चले जा रहे हैं, क्यों कि हमारी संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति के चंगुल में फंस गई है। पहिनावे में हम आज भो विदेशी हैं, बोलचाल में अंग्रेजी को सम्माननीय समझा जाता, कांटे-छुरी से मेज पर बैठ कर खाने में उच्चता तथा शालीनता का आभास होता है। आज के युवक और नई जवानियाँ सिगरेट के छल्ले बनाकर होटलों और रेस्तरओं में दम तोड़ रहीं हैं। चन्द समृद्ध जिन्दगानियां फैशनपरस्तों और नकलचियों के रंग में रंगती जा रही हैं।

गांधी जी की परिकल्पना

गांधो जी मनुष्य की उन्नति और सुधार को विश्व-शांति की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम मानते थे। उन्होंने आदर्श विश्व की परिकल्पना ''हिन्द-स्वराज्य'' के रूप में दी। उनको कल्पना के संसार में स्टेट की, राज्य को कोई आवश्यकता नहीं है और सबकी सबसे अधिक भलाई सर्वमान्य सिद्धान्त माना गया है। गांधी जी के आदर्श संसार में सब सत्ता, सब अधिकार, सभी जिम्मेदारियां विकेन्द्रित होने को थी। उनका कहना था—''केन्द्रीकरण, बिना समुचित शक्ति के न तो चल सकता है और न सुरक्षित रह सकता है। इसलिए उसका अहिंसक समाज से मेल नहीं खाता।'' उनके शब्दों में मशीनें शोषण को बढ़ावा देती हैं, और औद्योगीकरण ही सब कुछ नहीं है। उनके विश्व में 'सर्वोदय' या सबकी भलाई का महत्व माना गया।

आज के भारत में महगाई इतनी अधिक हो गई है कि लोग अपनी स्वाधीनता के महत्व को पहचानने से इन्कार करने लगे हैं। भ्रष्टाचार हर क्षेत्र में है, यही सुनने में आता है। लोग कहते हैं कि लाल-फीताशाही के युग में, ब्यूरोक्रेसी के चंगुल में फँसा देश न्याय का चन्दन भी नहीं स्वीकार सकता।

दिशा--बोध

हम आज नये परिवेश में जीना चाहते हैं लेकिन अतीत को भी सीने से चिपकाये रखना चाहते हैं। वह अतीत जिसमें विदेशी भावना का संमिश्रण था। हमें अतीत की बुराइयों का चयन कर उसे छोड़ना अच्छा होगा। हमें पहले सामाजिक भावना का आदर करना आवश्यक है। एक धर्म, एक भाषा, 'कॉमन प्लेटफार्म आफ एक्जीक्यूशन' ही तो हमें एक सूत्र में बाधने में सहायक है। जब तक हम में ऐक्य नहीं तब तक समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। गुण, वस्तु व धर्म के आधार पर 'भारतीय' होने का सच्चा गौरव प्राप्त होना चाहिये। तभी हम वास्तविक स्वाधीनता का रसास्वादन कर सकेंगे।

★

मनुष्य के तीन मित्र

भारत बन्धु शर्मा, दिल्ली

सच्चा मित्र वह है जो विपदाओं में भी दूसरे का साथ देता है। उत्कर्ष में तो सभी हमारे गुण गाते नहीं अघाते वे तो हम पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को लालायित दिखायी देते हैं। उनकी परख तभी होती है जब हमें विपदाएं आ घेरती हैं। उस समय की परिस्थिति को देखते हुए कदाचित गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस मे ये पंक्तियाँ समाविष्ट की —

धीरज धर्म मित्र असनारी।

आपत्काल परख यहिचारी ॥

ऐसे अवसरों पर तो सभी सगे सम्बन्धी हमें एकाकी छोड़ देते हैं। धन्य हैं वे महान व्यक्ति जो इन विकट परिस्थितियों में भी धैर्य को अपना कर अपने मार्ग पर आरूढ़ रहते हैं। अहो सौभाग्यशाली हैं वे व्यक्ति जिनकी धर्मपत्नी, पुत्र, मित्र आदि ऐसे अवसर पर पीठ न दिखाकर छाया की भांति अपने प्रियजन के साथ रहते हैं।

आपदाओं की इस दशा में तो (एक उर्दू कवि की वाणी में) सभी संग त्याग देते है लिखा है —

(१)
सियाह — बख्ती में कब कोई, किसी का साथ देता है।
(२) (३)
कि तारीकी में साया भी जुदा इन्सां से रहवा हैं॥

(१) दुर्भाग्य के दिनों में (२) अन्धकार में (३) परछाई

भले दिनों मे हमें अपने सगे—सम्बन्धियों, मित्रों धन आदि के बल पर भरोसा रहता है। इस कारण कदाचित हम यह नहीं सोच पाते कि हमारे सुकृत हमें विपदाओं के पंक (कीचड़) से निकालने की क्षमता रखते हैं।

इस प्रसंग में हमारे मस्तिष्क में भारत के भूतपूर्व स्वर्गीय डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जी के एक लेख की स्मृति उभर आती है जिसमें उन्होंने एक लघुकथा द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट किया है। उच्चकोटि के इस महान दार्शनिक ने इस प्रकार लिखा है।

एक व्यक्ति के तीन मित्र थे। वह एक को अपने निकटतम मानता था और उस पर उसे पूर्ण विश्वास था कि वह उसका अभिन्न अंग है। दूसरा मित्र उसके निकटतर था और वह प्राय: उसके सम्पर्क में आकर आनन्द अनुभव करता था। उसकी मित्रता पर भी उसे विश्वास था। उसके तीसरा मित्र से उसकी यदाकदा भेंट हो जाती थी किन्तु वह उसका अधिक विश्वास भाजन न था।

दैवयोग से उस व्यक्ति को एक अपराध में पकड़कर न्यायाधीश के सन्मुख प्रस्तुत किया गया। उसकी लोकप्रियता को देखते हुए न्यायाधीश ने उसे जमानत पर मुक्त करना स्वीकार कर लिया। अब उसे एक ऐसे व्यक्ति (जामिन) की खोज हुई जो उसकी मुक्तावस्था की अवधि में उसका उत्तरदायित्व लेने को तैयार हो।

अपने मित्रों से सहायता प्राप्त करने की धारणा से वह अपने परममित्र के पास गया तथा उससे जमानत देने का अनुरोध करने लगा, उस पर आये संकट पर गहरी सहानुभूति व्यक्त करते हुए वह बोला, मित्र मुझे बडा दुख है परन्तु मैं तुम्हारे साथ न्यायालय के प्रवेशद्वार तक ही जा पाऊंगा आगे नहीं।

निराश होकर वह दूसरे मित्र के पास गया। उसका नकारात्मक उत्तर सुन तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसने तो साथ जाने से इन्कार कर दिया।

अतिखिन्न होकर वह उस मित्र के पास गया जिससे उसे सहायता की बहुत कम आशा थी वह मित्र उसकी करूणगाथा सुनकर घबरा गया और कातर स्वर में बोला भाई तुम जहा भी चाहो मुझे ले चलो में हर संभव उपाय से तुम्हे पूर्ण रूप से मुक्त कराने का भरसक प्रयत्न करूँगा।

यह सुनकर वह व्यक्ति गदगद हो गया और उसे गले लगाकर बोला भाई तुमने मुझे जो सान्त्वना दी है वह संसार के सभी प्रियजनों की सम्पत्ति आदि से कहीं बढकर है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारी अमूल्य सहायता से मैं अपराध मुक्त हो जाऊंगा।

अब प्रश्न यह उठता कि उस व्यक्ति के ये मित्र कौन थे? जो मित्र उसके निकटतम था सगेसम्बन्धियों प्रतिनिधित्व करता है। ये प्रियजन यम के 'प.श' में बद्ध अपने जीवन साथी के साथ तो जाते हैं किन्तु श्मशान भूमि से आगे नहीं। 'दूसरा मित्र (धन वैभव) तो एकदम साथ छोड़ देता है और तीसरा मित्र (व्यक्ति के सत्कर्म) तो उससे कभी अलग नहीं होता। सभी स्थानों पर वह साथ रहता है।

राम के श्रद्धालुओं, हमें संसार के व्यक्तियों तथा धनवैभव पर अधिक भरोसा नहीं करना चाहिए। ये अधिक दूरी तक हमारे संग नहीं रहते। यदि कोई हमारा साथ देता हे तो वे हमारे कर्म है, दूसरे शब्दों में यह धर्म है। धर्मराज युधिष्ठिर के साथ कुत्ता (धर्म) अन्त तक चलता रहा था

गतांक से आगे:—

—स्वामी सारशब्दानन्द जी महाराज

चतुर्थ भक्ति :

चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ॥

चौथी भक्ति यह है कि कपट त्याग कर ईश्वर के गुण समूह का गायन करना। जो लोग गायन करते हैं कि हमारे स्वर की मधुरता को जानकर अन्य व्यक्ति मोहित हो जायं। वे लोगों को प्रसन्न करते हैं। मेरे गुण मेरे लिए नहीं गाते, यह लोकाचार भक्ति है। कबीर जी ने सत्य कहा है। वाक्य गुरु ग्रन्थ साहिब—

अन्तर मैल जो नहावे, तिस बैकुण्ठ न जाना।
लोक पतीने कुछ न होय, नाहि राम अयाना ॥

अन्दर अहंकार, कपट का मैल हो ऊपर से तीर्थ-स्नान करते रहो, इससे तो लोग प्रसन्न होंगे न कि राम! सो मेरे अयाने नहीं जो बाहरी क्रिया कपट को देखकर अन्य व्यक्तियों की भांति पसीज जायेंगे। मनुष्य तो 'भक्त जी' कहेंगे, परन्तु राम के सम्मुख भक्त जी लज्जा के मारे जा न सकेंगे। उसे वैकुण्ठ प्राप्त न होगा। आगे कबीर करते हैं—

पूजो राम एक ही देवा,
साचा नहावन गुरु की सेवा।

अन्त में यही भेद खुला कि जो श्रीमुख से भगवान् कह रहे थे कि मेरी सच्ची पूजा गुरू की सेवा ही मन का सच्चा स्नान है। श्री गुरु अमर-देव जी ने भी गुरू दरबार का पानी ढोया और निरमान होकर सेवा की जिससे एक दिन वे संसार में तो चाहे नित्थावे कहलाये, परन्तु तत्पश्चात गुरु कृपा से नित्थावे के थावों, न ओटयों की ओट, न पतयों की पत तथा न गतियों की गत बने। इनको मान की आवश्यकता न थी, परन्तु वह मान जो अन्दर था, वह भी गुरु चरणों में भेंट कर दिया और गुरु घर से वह सच्चा मान

मिला कि वे भी गुरू बन गये। श्री रघुनाथ जी शबरी के प्रति पांचवी भक्ति का वर्णन करते हुए करते हैं —

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।
षट दम शील विरति बहुकर्मा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।।

मेरे मंत्र का दृढ़ विश्वास करके भजन करना पांचवी भक्ति वेद ने कही है। गुरु का बताया मार्ग अथवा जाप मंत्र मेरी प्राप्ति के लिए पूर्ण विश्वास के साथ करे। दृढ़ विश्वास के बिना मत्र जाप बेकार है। गुरू का मंत्र औषधि है और औषधि का पान श्रद्धा, विश्वास से होना आवश्यक है, जैसे —

रघुपति भक्ति सजीवन मूरी,
अनुपान श्रद्धा अति रूरी।

मंत्र का जाप तो अनेक करते हैं परन्तु प्राप्ति नहीं होती। इसका कारण यह है कि नाम मंत्र से तो प्रेम है और नामी राम से प्यार बिश्वास नहीं तो नाम फलभूत नहीं होता। भील एकलव्य को शस्त्र विद्या सीखने की रुचि थी, परन्तु गुरु द्रोणाचार्य जी ने जो ने जोकि राजकुमारों के गुरु थे, एकलव्य को शस्त्र विद्या सिखाने से इन्कार कर दिया। एकलव्य में इतना विश्वास और प्रेम था कि उसने द्रोणाचार्य जी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर, उनके ध्यान में लीन होकर वास्तविक गुरु द्रोणाचार्य जी से शस्त्र विद्या सीख ली। प्रेम और विश्वास में इतनी शक्ति है। इसलिए हमारे भारतवर्ष में चिरकाल से व्यास पूजा प्रसिद्ध है कि समय का व्यास पूजा जाता है। वेदों के सम्पादक भगवन् व्यास देव जी का सबसे बड़ा उपकार यह था कि उन्होंने महाभारत और गीता के रूप में सकल जगत् को ज्ञानामृत प्रदान किया। अपने सोये हुए भारत को जगाया। जगाने वाले का ही नाम गुरु है। शास्त्र ने गुरु बचनों पर विश्वास और गुरु पूजा को क्यों कहा? इसलिए कि गुरु ही उसको सत्य स्वरुप दर्शाता है। इस चमड़े के नाशबान शरीर से अलग होने का गुर बताना और उस अविनाशी आत्मिक धन का कोष दिखाना, जिसको यह जीव पाकर अमर पद का आनन्द लेता है। जो किसी के ऊपर उपकार करता है, उपकार कराने वाला स्वाभाविक ही उसकी प्रशंसा करता है। भला जिस गुरुदेव ने उसको आवागमन के चक्कर से बचाना, अमर पद दर्शाना तथा ससार का सार समझाना है और निश्चय कराना है उसके वचनों पर जब तक दृढ़ विश्वास न होगा और श्रद्धा से उनका पान न करेगा, तब तक अपनी वास्तविकता पांचवीं भक्ति की कैसे प्राप्त कर सकता है? इसका प्रकाश वेद में भली भांति हुआ है। वेद कहता है—

श्रद्धावान् लभयते ज्ञानम्।

क्रमशः

आज नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा का अभाव

डा० बीना शर्मा,
M.A. Ph. D.

एक सड़क पर चलते वृद्ध राही ने एक बालक से पूछा 'बेटा ! स्वामी रामतीर्थ आश्रम [राजपुर] को कौन सा मार्ग जाता है ?

बालक ने हंसकर कहा– 'सीधे चले जाइये। यही मार्ग स्वामी रामतीर्थ आश्रम [राजपुर] जाता है।

कुछ दूर जाने पर वृद्ध राही ने एक सज्जन से पूछा– भाई ! स्वामी रामतीर्थ आश्रम[राजपुर]कितनी दूर है ?

सज्जन ने कहा–'बाबा आप गलत मार्ग पर आ गए हैं। यह मार्ग स्वामी रामतीर्थ आश्रम [राजपुर] को नहीं जाता है।

बालक ने जानबूझ कर वृद्ध राही को गलत मार्ग बताया। आखिर उस बालक ने ऐसा क्यों किया ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसमें बालक का कोई दोष नहीं अपितु उसके परिवेश का दोष है। उसके चरित्र-निर्माण करने वाले तत्वों की लघुता है।

सर्वप्रथम तो बालक को परिवार में नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा नहीं मिलती है। शिक्षित माता-पिता नौकरी करते हैं। उनके पास अवकाश ही कहां है कि वे बालक के चरित्र-निर्माण में पूर्ण सहयोग दे सकें। अशिक्षित माता–पिता इस ओर ध्यान ही नहीं देते हैं।

परिवार के बाद बालक विद्यालय में आता है। आज अध्यापक वर्ग भी इस ओर विशेष ध्यान नहीं देता है। सर्व प्रथम तो हमारी शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। उसमें प्रार्थना के अतिरिक्त नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा को कोई विशेष महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है। विद्यालय आज व्यापारिक केन्द्र बन गये है। जहां से बालक को केवल प्रमाण पत्र या डिग्री प्राप्त होती है इसके जीवन के महत्वपूर्ण पहलू चरित्र का विकास नहीं होता है।

आज बालक के जीवन को सुधारने एवं उसमें मानवीय गुणों का विकास करने की ओर उसका किंचित मात्र ध्यान नहीं है। इस बात को ध्यान में रखकर डा० राधाकृष्णन ने कहा है—'भारत सहित सारे संसार के कष्टों का कारण यह कि शिक्षा का सम्बन्ध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है।'

एक बार महात्मा गांधी जी से पूछा गया कि— "What will the your aim in education when India becomes independent ? His reply was—charactor'

स्पेन्सर ने तो यहां तक कहा है—Not education but charactor is man's greatest need and man's greatest safeguard."

पर आज हमारी शिक्षा चरित्र का विकास एवं

निर्माण करने में पूर्ण सहयोग नहीं दे रही है। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर शिक्षा की यही स्थिति हैं। यद्यपि विश्वविद्यालय स्तर पर कुछ विश्वविद्यालयों ने इस ओर ध्यान दिया है। स्नातक स्तर पर 'धर्म एवं संस्कृति' इस विषय का अध्ययन अनिवार्य कर दिया है। पर यह इस दिशा में पर्याप्त नहीं है।

नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा के अभाव में देश के भावी नागरिक के व्यक्तित्व का विकास होगा तो आप कल्पना कीजिये भारत का भविष्य क्या होगा? बड़ा हो कर बालक जिस भी क्षेत्र में जायेगा वह अराजकता के अतिरिक्त कुछ भी न दे पायेगा। यदि वह व्यापारी बनेगा, तो बेईमानी से धन कमायेगा। वस्तुओं मे मिलावट करेगा। देश के नागरिकों के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ेगा। यदि किसी उच्च पद पर आसीन होगा तो भी यह अपने कर्तव्य का पालन उचित रीति से नहीं करेगा चरित्रहीनता सबसे बड़ा अभिशाप है। किसी विद्वान ने कहा है—

"Welth is lost nothing is lost
Health is lost something is lost
Charactor is lost every thing is lost'

धर्म ही समाज में नैतिक व्यवस्था स्थापित करता हैं। वह प्राणी मात्र में सद्गुणों का विकास करया है। धर्म से मेरा तात्पर्य हिन्दू धर्म या मुसलमान धर्म नहीं है अपितु सार्वभौमिक धर्म है जो मानवमात्र में मानवोचित गुणों दया, प्रेम, नम्रता, अहिंसा, परोपकार का विकास करे। उसे पशु से मानव बना दे और नर से नारायन बना दे। अत: धार्मिक शिक्षा के अभाव में नैतिकता का विकास सम्भव नहीं है। नैतिक शिक्षा के अभाव में श्रेष्ठ मानव का निर्माण कैसे हो सकता है।

आज हम अपने ऊंचे आदर्शों को भूलकर फैशन परेड में सम्मिलित हो गए हैं। आज नयी पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगी जा रही है। कुछ बुद्धिवादी युवा धार्मिक परम्पराओं का खण्डन करना परम कर्तव्य समझते हैं।

उनके लिये धार्मिक सिद्धान्त, मान्यताएं हास्य-विनोद का साधन मात्र है। भौतिकता की ओर हम तेजी से बढ़ते जा रहे है वास्तव में हमारा जीवन खोखला होता जा रहा है। मानवता हमारे में नाम मात्र को भी नहीं है। जब तक हम प्राणी मात्र को वास्तविक मानव नहीं बना सकते। ईश्वर बनाने की कल्पना करना केवल मात्र खिलवाड़ है। आज के परिवेश में मानवता अपरिहार्य है। कवि ने कहा है—

"सुमन सुन्दर, विहग सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम"

प्रभु की सबसे सुन्दर कृति मनुष्य है। मनुष्य सत्यं, शिवं से संयुक्त होने पर नारायन बन जाता है। केवल मात्र उपदेश देना, ऋषि-मुनियों की पुण्य तिथियां मनाना, धार्मिक उत्सव मनाने पर्याप्त नहीं है। अपितु प्राणी मात्र को वास्तविक मानव बनाकर ईश्वरत्व की ओर ले जाना है। आज हमारी धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं का परम कर्त्तव्य है कि वे नैतिक एवं आध्या-

त्मिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देवें। नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देवें। नैतिक एवं आध्यात्मिक - क्षाशि शिविर चलायें। छोटे छोटे विद्यालय खोले जहां पर बालकों को विशेष रूप से नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा दी जाये।

आज वैषम्य की वेला में असन्तोष के प्रसव में राजनीतिक हलचल में, धर्म और सांस्कृतिक दैनन्दिन पराभव में नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा अपरिहार्य है।

मेरा सभी धार्मिक संस्थाओं से नम्र निवेदन है कि यदि वे देश को आध्यत्मिक दृष्टि से उन्नत बनाना चाहते है तो उन्हें अपनी नयी पीढ़ी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। भटकते हुये युवा वर्ग को राह दिखानी चाहिए जो पुरानी परम्पराओं के खन्डन में संलग्न है और नयी परम्पराएं बनाने में असमर्थ आज हम सब भाई-बहनों का परम कर्तव्य है कि हम अपने समाज का सुधार करें उसका उत्थान करें। अन्यथा भारत का भविष्य अन्धकारमय दृष्टिगोचर होता है। युवा-संयासियों के ऊपर इसका अधिक भार है कि वे सही राह पर लाएं। ऐसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देवें जो उन्हें वास्तविकता की ओर ले जा सकें एवं यथार्थ का ज्ञान करा सकें। शिक्षा कदापि यह नहीं सिखती की हम नींव रहित महल का निर्माण करें। स्वामी राम की पावन भूमि की युवा पीढ़ी की इस दशा को देखकर मन खेद से भर जाता है। जगत गुरु कहलाने वाले भारत का भविष्य संकट में नजर आता है।

हमें स्वामीराम, स्वामी विवेकानन्द जैसे महानुभावों के जीवन से शिक्षा लेकर अपने चरित्र का निर्माण करना है। महान पुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेकर अपने चरित्र को सुदृढ़ बनाना है।

"प्रेम और भक्ति"

''भेंट हैं तुझको मेरे प्राण—हे प्रभु, ले लो इनको आन''

इस कविता में "प्रभु" शब्द से तात्पर्य कोई आकाश में बैठा हुआ बादलों में सर्दी खाने वाला अदृश्य हव्वा नहीं है; प्रभु का अर्थ है सर्वरूप परमात्मा-तुम्हारा सहवर्ती जन-समुदाय।

* * *

प्रेम—मैं ही इस समस्त परिवर्तनशील संसार का आदि और अन्त हूं। ऐ मनुष्य ! मुझसे परे अन्य कुछ भी नहीं—जैसे माला के दाने धागे में पिरोये होते हैं, इसी प्रकार केवल एक (प्रेम स्वरूप) में यह सारा जगत् पिरोया हुआ है।

—स्वामी राम

★ स्वामीराम का प्रथम सन्देश ★

सफलता का दूसरा सिद्धान्त—आत्म त्याग (Self-Sacrifice)

हर एक आदमी सफेद चीजों को प्यार करता है। आओ हम उनके सार्वभौम प्रेमपात्र होने का कारण कारण जानें, और सफेद वर्ण की सफलता का सबब समझें। काली चीजों से सब कहीं घृणा की जाती है, वे सर्वत्र उपेक्षित होती हैं, कहीं भी उनका आदर नहीं होता। इस तथ्य को मानकर हमें इसका जानना चाहिए।

पदार्थ-विज्ञान हमें रंग के चमत्कार की असलियत बताता है। लाल, लाल नहीं है, हरा हरा नहीं काला, काला नहीं है; और सभी चीजें जैसी दिखाई पड़ती हैं वैसी दिखाई पड़ती हैं वैसी नहीं है। लाल गुलाब को लौटाने या प्रतिक्षेप करने से ही अपना सुहावना (लाल) रंग पाता हैं। गुलाब सूर्य की किरणों के अन्य सब रंग अपने में लीन कर लेता है और उन रंगों को गुलाब का कोई नहीं कहता। हरी पत्ती प्रकाश के अन्य रंगों को अपने में लीन कर लेती है, किन्तु जिस रंग को ग्रहण नहीं करती तथा लौटा देती है, उसी की बदोलत वह ताजी और हरी जान पड़ती है। काले पदार्थों में (प्रकाश के) सब रंगों को अपने में लीन कर लेने और किसी को भी वापिस न लौटाने का गुण होता है। उनमें आत्म-त्याग और दान का भाव नाम मात्र को भी नहीं होता। वे एक किरण को भी त्याग नहीं करते। वे जो कुछ प्राप्त करते है उसका जरा सा अंश वापिस नहीं लौटाते। प्रकृति आपको बतलाती है कि जो कोई अपने पड़ोसी को अपनी प्राप्त वस्तु देने से इन्कार कर देता है, वह काला, अर्थात कोयले समान दिखाई पड़ता है। देना ही पाने का उपाय है। सर्वस्व त्याग, जो कुछ मिले वह सब का सब अपने पड़ोसियों को दे डालना ही उज्ज्वल मालूम पड़ने की कुन्जी है। सफेद वस्तुओं के इस गुण को प्राप्त कीजिये और आप सफल होंगे। सफेद से मेरा मतलब क्या है ? यूरोपीय ? केवल यूरोपीय ही नहीं, सफेद शीशा, सफेद मोती, सफेद कपोत, सफेद बरफ, विशुद्धता और शुचिता के सभी चिन्ह आपके महान् गुरु है। इसलिए आत्म-त्याग की भावना को पान करो और जो तुम्हें मिले उसे दूसरों पर प्रतिक्षेप करो। स्वार्थ पूर्ण शोषण का आश्रय न लो और तुम उज्ज्वल हो जाओगे। अंकुरों में फूटकर वृक्ष बनने के लिए बीज को अपने मिटना पड़ता है। इस प्रकार पूर्ण आत्म त्याग का अन्तिम परिणाम सफलता है। सभी शिक्षक मेरे इस कथन का समर्थन करेंगे कि ज्ञान का प्रकाश जितना ही अधिक हम फैलाते है उतना ही अधिक हम प्राप्त करते हैं। ★

"Sorry wrong number

I will try to expore my ideas for you to help you find seme harmony to give you a smile, the symbol of inner realization and happiness. To show you that often what we think to be problems, are not really problems at all, while, at other times, we unnecessarily create our own misery and pain and sorrow.

I want to give you something you can do to establish the practical Yoga; what I call the "Cash Payment Yoga" in your life. I call it "Cash Payment" because you get the benefit now, not sometime in the future, not in some other state, but right here and now. I will tell you a story so you will get the moral of being removed from the action, or abuse of others. When someone berates you or accuses you, just remember this story.

Early one morning while visting a city, I was sitting for meditation when the teleph-one rang. As soon as I picked up the rece-iver, a person on the other end began to abuse me before I was able to say 'hello. On and on he went with the most abusive and terrible lenguage, callIng me all sorts of names and accusing me of cheating the stock market of all manner of things. For many minutes this conttnued till finally the man said "well, haven't you anything to say. Aren't you going to defend yourself? "why dont't you say something? I did say smilingly and lovingly I said, "SORRY WRONG NUMBER" and hung up the receiver. Poor man, I felt sorry for him, now he would have to go through it all over again when he found the right num-ben, but it had no effect on me. Why? I was not the person.

In the same way, when someone abuses, you, just let him rave and rant and sarquietly within, "Sorry, Wrong Number" Then it can't hurt you; then it can't have any effect on you. No one really knows the 'true' you. Only you yourself can know that. Know in your heart when you are alused, accused or even praisen that you are really not that. person.

(Contd. on page 23)
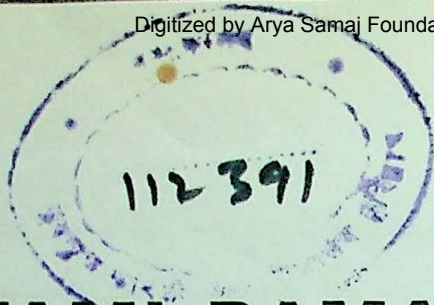
SWAMI RAMA TIRTHA IN MODERN CONTEXT

(Contd. From Last Issue)

He declared, "Not a religion, but the religion, which is the soul of Islam, Hinduism of Christianity is, strictly speaking, that indescribable realization of the unknowable, where all distinctions of caste colour and creed, all dogmas and theories the body and the mind, time, space and casuality together with all that is contained therein, this world and all other imaginable worlds are washed clean off into what no words can reach."

Swami Rama had a very practicel view of Sadhna. Sadhna for him was no an exclusive practice with ascetic privations but a sincere and truthful undertaking for a total self-culture aiming at spiritual perfection, His views on sex can be termed almost revolutionary in their essence; as these steer clear of the two extremes namely Carnal indulgence on the one hand and extra-cautious puritanism on the other. Sex control is necessary but, it has to grow on a sound basis of enlightenment, natural evolution and liberal attitude. He declares, "Attaching undue importance to the merest triffle of outward purity, nay, sex hatred keep you off from the only true purity—Realization of the Self." However he calls sex energy as divine energy and for good life it is to be properly controlled and used. He says, "The root of all sin is the divine energy misdirected."

VIEWS ABOUT INDIA

Swami Rama's concept of Nationalism was unique. In his famous "An Appeal to Americans" he reminded the American brethern in the name of humanity and freedom the world's spiritual debt to India. He vividly described the helpless condition of the country under the British Rule and sought their help in matters of Education and Scientlfic practicality and composite culture. For

A Paper read by Dr. Anirudh Joshi, Chandigarh in National Seminar on Swami Rama Tirtha held from 29th October to 2nd November, 1973.

him freedom of India was a question of humanity. No one political unit could prosper in inisolation in a world of increasing compactness. The universalized vision of Swami Rama Tirtha apprehend that if other nations don't jointly work for the cause of India's political freedom, there are chances of humanity's suffering at large. This is truth, the practical value of which is being more realized in the growing internationalism of today. But the Swami had full faith in India s future which he thought will be inevitably splendid. But he had some thing great for the future educationist of India. He declared "proper education should enable the people to make the land more fertile, the mines more productive, the trade more flourishing, the bodies more active, the minds more original, the hearts more pure and the industries more varied and the nation more united." I wish our educationists had listened to the advice of this gteat soul.

Swami Rama was also against any kind of caste-ridden society in India. He declared emphatically, "The rigidity of laws, customs and Karmakanda saps the vitality of a nation." He considered too much stress on old customs and heredity as degradation below the level of a man.

Though it is impossible to put in these few pages his great utility for the modern generation. It can be said with conviction that his teachings are greatly relevant today because of the modernity of outlook, scientific explanations and a great vision of future. He has been the greatest reformer of India, through his personal, compassionate zeal, universal sympathies and spiritualized patriotism.

—()—

(Contd from page 21)

In Tokyo, a lady heard me tell this story and, when she went home, her husband was angry with her and bagan to abuse her and carry on at great lengths and she just took it all quietly and, when he had finished, said pleasantly, ":SORRY, WRONG NUMBER." He wanted to know what all this "sorry worng number". stuff was about. So she told him the story from my lecture and next day he was in my audience and afterwards came to me and said, Swami, for 20 years I have been abusing my wife and only yesterday, I found out this I was the 'wong number, and not she.

Learn to concerntrate. Discipline the mind, control the emotions, realize the self. Do a little everyday to raise your mind and life.

OM OM !

To

Mrs. E.C. Campbell,

You are constantly remembered by Rama.

You are so sincere, pure, noble, earnest, faithful, and very good ! Are you not ?

1. To compare or contrast one person with another in the mind,
2. To compare oneself with anybody else mentally,
3. To compare the present with the past and brood over the memory of past mistakes.
4. To dwell upon future plans and fear anything,
5. To set our heart on anything but the one Supreme Reality,
6. To depend on outward appearances and not to practically believe in the inner Harmony that rules over everything,
7. To jump up to the conclusion from the words, or seeming conduct of people and to rest thoroughly satisfied with faith in the Spiritual Law,
8. To be led astray too far in conversation with the people—

It is these that breed discontent in people's mind. Therefore shun these eight sources of trouble. OM !

Your Own Noble Self as

Rama Swami

★ आश्रम समाचार ★

संसाररूपी उपन्यास में हर दिन एक पृष्ठ की तरह आता है और चला जाता है। अध्याय आते हैं और धीरे धीरे अपने उद्देश्यों 'इति' की ओर बढ़ते जाते हैं परन्तु कोई कोई अध्याय ऐसा होता है जिसमें वह सारा, सब कुछ, पूरी तरह आ जाता है जिसे उपन्यास का मुख्य केन्द्र-विन्दु कहा जा सकता है। और ऐसा अध्याय होता है किसी भी उपन्यास का पहला अध्याय, जिसमें सारी भावी घटनाएं बीजरूप में होती हैं। उन सबका सामान्य परिचय हमें मिल जाता है इसमें जिनके चरित्र का विकास बाद में उपन्यासकार द्वारा किया जाना है।

स्वामी रामतीर्थ मिशन की उस भूमिका के बाद, जिसका प्रारम्भ परमश्रद्धेय ब्रह्मलीन **स्वामी हरिॐ जी महाराज** द्वारा किया गया था और जिसकी समाप्ति, इति हुई थी सन् १९५५, ४ दिसम्बर को दिल्ली में, प्रथम अध्याय श्रद्धेय आचार्य **स्वामी गोविन्द प्रकाश** जी महाराज की परमाध्यक्षता में व पूर्णतः संरक्षण में प्रारम्भ हुआ। सारा खांचा, जो भावी मिशन का होना चाहिए, प्रवर ने अंकित कर दिया। और जो कुछ अवैज्ञानिकता उन्होंने मिशन की व्यवस्था के बारे में महसूस की उसकी ओर ध्यान देकर ही देहरादून से दिनांक २६-८-७७ को प्रस्थान करते समय समस्त निर्देशन दिये, जिसमें पत्रिका व अन्य कार्यालयीय कार्य भी सम्मिलित थे।

पर आज प्रतीत होताहै कि ये निर्देशन उनके अन्तिम निर्देशन थे, तभी तो सहारनपुर पहुंचते ही काल ने हृदय सम्बन्धिनी अस्वस्थता द्वारा चेतावनी देनी प्रारम्भ कर दी थी। अस्वस्थता के कारण सोया सा महाराज श्री का व्यक्तित्व जगा और भविष्य दृष्टि के कारण हठपूर्वक अज्ञात अवस्था में संस्कृतनिष्ठा को सिद्धि करने हेतु अचेतन मन से प्रेरित होकर हरिद्वार में दिनांक १३-९-७७ को पदार्पण करते हुए आपने संस्कृत विद्यार्थियों और विद्वानों का भोज के साथ पूर्णतः सम्मान किया। दिनांक १५ को check-up के लिए देहली की ओर प्रस्थान करने के बाद उस स्थान ने, जहाँ पूज्य स्वामी हरिॐ जी महाराज ब्रह्मलीन हुये थे, मानों अपनी ओर निर्बन्धता हेतु बुलाना प्रारम्भ कर दिया। कर्मक्षय के फलस्वरूप अपने शारीरिक बन्धन तोड़, अपने कर्त्तव्य का पूर्णतया निर्वाह करते हुए, एक कर्मठ योगी (कर्मयोगी) की तरह दिनांक १९ की अपरान्ह दो बजे आपने आत्मस्थिति को प्राप्त किया, आप ब्रह्मलीन हो गये। अश्रुपूरित नेत्रों से दर्शनयुक्त रामप्रेमियों ने हरिद्वार में पूर्ण सम्मान के साथ २०-९-७७ को ४ बजे आपके पार्थिव शरीर को जलसमाधि दी। गंगधार ने अपने प्रिय सुपुम को अपनी गोद में ले आनन्दातिरेक से मौन साध लिया। मौन हो गया परितः समस्त वातावरण, पर, लहरों द्वारा यह रामभक्त पुकार कर जीवन की क्षणिकता का उपदेश देता हुआ कह रहा था—अल्विदा ए दोस्तों दुश्मन अल्विदा।

रविवारीय सत्संग में समस्त दूनवासियों ने दो मिनट का मौन रख प्रवर को श्रद्धाञ्जलि समर्पित की और रामचरणों में आत्मशान्त्यर्थ प्रार्थना की। पर **जेतली जी** ने इसे मात्र औपचारिक माना। **श्री विश्व नाथ जी सभ्रवाल** व **श्री सरदारी लाल जी ओबेराय** ने उनकी (महाराज श्री की) निरभिमान प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए उनके कार्यक्षेत्र में हृदयपरिवर्तन के सिद्धान्त की ओर संकेत किया। मोटवानी जी ने गीता के अव्यक्तादी-निभूतानि गुह्यश्लोक की व्याख्या की व अन्त में **स्वामी हंसप्रकाश जी** महाराज ने सांत्वना देते हुए बताया कि गुरुदेव आज भी हैं मात्र हममें भाव-शक्ति चाहिए उनकी वास्तविक सत्ता को अनुभव करने की। इसी दिन परम श्रद्धेय **स्वामी अमरमुनि जी** महाराज की अध्यक्षता में दिल्ली शाखा ने कर्मयोगी-शिवतत्वनिष्ठ— सन्त को भावमयी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की।

आश्रम का वातावरण मौन बन, उन्हीं की पूर्व कल्पनाओं में विचर रहा है। आश्रमस्थ हर रामप्रेमी की अश्रु-युक्त आंखों में शून्यता द्वारा उसके हृदय की उस भाव स्थिति का ज्ञान होता है जहां वह अपने टूटे सपनों को संजोने का और कुछ खोये हुए को पाने का प्रयत्न कर रहा है।

स्वनामधन्य, महापुरुष सद्गुरुदेव की पावन स्मृति में दिनांक ५-१०-७७व ६-१०-७७ को क्रमशः अवधूतमण्डलाश्रम, स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून में श्रद्धाञ्जलि समर्पण हेतु, जिसमें समष्टि भोज भी होगा, आप सब सस्नेह आमन्त्रित हैं।

शेष समस्त समाचार अग्रिम अंक में विस्तारपूर्वक विशेषांक के रूप में आपकी सेवा में प्रकाशित होगा।

दूरभाष-८४२२१ राजपुर, ४२६७ देहरादून, तार का पता-(वेदान्त) देहरादून, रजि० नं. डी. एल. १५

—सूचना—

१—मासिक पत्रिका 'राम सन्देश' न मिलने पर अपने समीपस्थ डाकखाने (पत्रालय) से पता करने के पश्चात हमें सूचित करें। क्योंकि कभी किसी कारणवश "राम सन्देश" १५ ता० तक निकलता है। इसलिए शिकायत पत्र अपनी २ ग्राहक संख्या सहित दिनांक २० के बाद प्रेषित करने का कष्ट करें।

२—आप आश्रम में किसी भी प्रकार का धन भेजते समय यह लिखना न भूलें कि यह धन किस निमित्त भेजा जा रहा है।

३—यह प्रार्थना है कि जो पाठक इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं वे अपना सदस्यता शुल्क सम्पादक के नाम प्रेषित करें। सदस्यों को आजीवन पुनः बिना किसी शुल्क के यह पत्रिका प्रेषित की जायेगी।

४—स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून के आजीवन सदस्यों को कार्यकारिणी की १९७७ गोष्ठी के निर्णयानुसार यह सूचित किया जाता है कि सदस्य शुल्क वार्षिक १२ रु० के स्थान पर २० रु० कर दिया गया है तथा उन सदस्यों को मासिक पत्रिका का प्रेषण मास जनवरी १९७८ से निःशुल्क किया जाये। अतः सदस्य अपना वार्षिक शुल्क भेजते समय १२ रु० के स्थान पर २० रु० प्रेषित करने का कष्ट करें।

५—'राम सन्देश' के विदेशी ग्राहक अपना वार्षिक शुल्क वार्षिक १५ रु० भेजें। क्योंकि परमाध्यक्ष जी की आज्ञानुसार १२ रु० के स्थान पर ३ रु० वृद्धि का निर्णय लिया गया है।

बुक पोस्ट

ग्राहक संख्या 483

श्री/श्रीमती पुस्तकालय

स्थान गुरुकुल कांगड़ी

डाकखाना विश्वविद्यालय

जिला हरिद्वार

मासिक पत्र—

"राम – सन्देश"

स्वामी रामतीर्थ मिशन

राजपुर, देहरादून (यू. पी.)

Pin-248009 भारत

स्वामी रामतीर्थ मिशन, राजपुर देहरादून (उ०प्र०) के लिए प्रकाशक स्वामी गोविन्द प्रकाश द्वारा न्यू आईडियल प्रिंटिंग हाउस, ४ बी, नेशविला रोड देहरादून में मुद्रित।